Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2350-0611**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – VII)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - *A Referred Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao,** Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

ଔ

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh,** Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari,** Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain,** Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas,** Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Research Highlights"

➲	माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर व्यक्तित्व का प्रभाव का अध्ययन ***डॉ. सोनम कुमारी***	01-05
➲	भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में योग एवं चेतना का सामान्य स्वरूप ***प्रवीण कुमार पाण्डेय***	06-10
➲	हिंदी आलोचना में जेंडर पूर्वाग्रह ***शिवानी*** ***कल्पना***	11-14
➲	विश्व–वन्धुत्व की भावना का प्रतीक है : वैदिक साहित्य Vedic literature is the symbol of the spirit of universal brotherhood ***डॉ. राम कृपाल***	15-19
➲	सतत विकास के संदर्भ में गांधीवादी विचारों की समकालीन प्रासंगिकता ***डॉ. रवि शंकर कुमार चौधरी***	20-26
➲	गया जी जिला के बेरोजगार युवाओं की सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव का अध्ययन ***पूजा कुमारी***	27-32
➲	किशोरियों में पोषण की स्थिति एवं एनीमिया में अंतर्संबंध और उसका शारीरिक विकास पर प्रभाव ***डॉ. प्रियादर्शनी कुमारी***	33-37
➲	समरसता की अवधारणा के आलोक में मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री–अस्तित्व का स्वरूप ***डॉ. रीना***	38-42
➲	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर किसान आंदोलनों का प्रभाव : एक ऐतिहासिक अध्ययन (1912–1947) ***श्वेता नेहा*** ***प्रो. प्रवेश भारद्वाज***	43-48
➲	भारतीय अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव ***डॉ. सर्वेश कुमार सिंह***	49-53
➲	मिश्रित शिक्षण प्रणाली : परंपरागत और डिजिटल शिक्षण का आदर्श मिश्रण ***प्रियंका रानी*** ***डॉ. देवेंद्र कुमार यादव***	54-58
➲	प्राचीन भारत में भूमि अनुदान और धार्मिक संस्थाएँः अभिलेखीय साक्ष्यों के आलोक में एक अध्ययन ***अबनीश कुमार***	59-63

माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर व्यक्तित्व का प्रभाव का अध्ययन

डॉ. सोनम कुमारी*

शोध सार (Abstract)

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनशीलता (Creativity) पर लिंग (Gender), व्यक्तित्व (Personality: अंतर्मुखिता एवं बहिर्मुखिता) तथा इन दोनों के अंतःक्रियात्मक प्रभाव (Interaction Effect) का अध्ययन करना था। शोध के लिए रोहतास जिला (बिहार) के 20 माध्यमिक विद्यालयों से स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Stratified Random Sampling) विधि द्वारा कुल 400 विद्यार्थियों (ग्रामीण क्षेत्र) का चयन किया गया। व्यक्तित्व मापन हेतु 'जलोटा एवं कपूर व्यक्तित्व इन्वेंटरी' (हिंदी रूपांतरण) का उपयोग किया गया। आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए 'द्विमार्गीय सह-प्रसरण विश्लेषण' (Two-Way ANCOVA) का प्रयोग किया गया। परिणामों से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार: सृजनशीलता पर लिंग का प्रभाव अत्यधिक सांख्यिकीय रूप से सार्थक ($F = 44.62$, $p < 0.01$) पाया गया, जिसमें छात्राओं का समायोजित माध्यांक (109.70) छात्रों के माध्यांक (103.40) से अधिक था, जो यह दर्शाता है कि छात्राएं, छात्रों की तुलना में अधिक सृजनशील हैं। सृजनशीलता पर व्यक्तित्व का मुख्य प्रभाव सार्थक नहीं पाया गया ($F = 1.60$, $p > 0.05$), जिससे यह स्पष्ट होता है कि अंतर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व सृजनशीलता को भिन्न रूप से प्रभावित नहीं करते हैं। लिंग और व्यक्तित्व के बीच अंतःक्रियात्मक प्रभाव **(Gender × Personality)** भी गैर-सार्थक ($F = 0.171$, $p > 0.05$) रहा। समग्र रूप से अध्ययन यह निष्कर्ष निकालता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनशीलता को निर्धारित करने में लिंग एक प्रभावी कारक है, जबकि व्यक्तित्व का प्रकार (अंतर्मुखी/बहिर्मुखी) सृजनशीलता में कोई महत्वपूर्ण अंतर पैदा नहीं करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): सृजनशीलता, व्यक्तित्व, अंतर्मुखिता, बहिर्मुखिता, माध्यमिक विद्यार्थी,

प्रस्तावना- सृजनात्मकता व्यक्तिगत अंतरों को प्रदर्शित करने का एक तरीका के रूप में लिया जा सकता है। सृजनात्मकता दैनिक उपयोग में कि जाने वाली शब्दावली का हिस्सा हो सकता है। सृजनात्मकता का प्रभाव व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलूओं पर पड़ता है। इसमें कुछ व्यक्ति खुद को सृजनात्मक व्यक्ति मानता है, लेकिन दूसरे व्यक्ति द्वारा उस कसौटी को नकार दिया जाता है। सृजनात्मक व्यक्ति या छात्रों को भीड़ से लोग अलग देखते हैं। क्योंकि वे छात्र नवाचार करने में सक्षम होते हैं और ये नकल करने के बजाय वे नवाचार करता है तथा उस कार्य को प्राथमिकता देता है। ये भीड़ को चुनौती देना तथा कठिन कार्य को करना पसंद करते हैं। यही गुण इनको नए विचार उत्पन्न करने में मदद करता है। यह नए चीजों का सृजन करने में भी मदद करता है। इन्ही सब कारणों से व्यक्तियों में साधारण आम तौर पर अंतर पाया जाता है।

व्यक्तित्व का अंग्रेजी अनुवाद Personality है जो Persona से बना है जिसका अर्थ नकाब होता है। जिसको पहले नायक उपयोग करते हैं। इसका मतलब है कि व्यक्ति के बाहरी वेशभूषा तथा दिखावे के आधार पर परिभाषित किया जाता है। लेकिन यह परिभाषा अवैज्ञानिक है। जिस व्यक्ति का बाहरी दिखावा भड़कीला होता था। उसका व्यक्तित्व उतना ही अच्छा समझा जाता था तथा जिस व्यक्ति का बाहरी दिखाबा साधारण होता था। उसका व्यक्तित्व उतना अच्छा नही समझा जाता था। आलपोर्ट (1987) के अनुसार "व्यक्तित्व

* सहायक प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, गिरीश नारायण मिश्रा कॉलेज, परसथुआ, रोहतास
Email: sonamsingh261092@gmail.com

व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं। आलपोर्ट की इस परिभाषा में व्यक्तित्व के भीतरी गुणों तथा बाहरी गुण यानी व्यवहारों दोनों को सम्मिलित किया गया है। परन्तु उन्होंने व्यक्तित्व के भीतरी गुणों पर तुलनात्मक रूप से अधिक बल डाला है।"

आइजेन्क (1952) के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्र प्रकृति, ज्ञान शक्ति तथा शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उनके अपूर्ण सामायोजन का निर्धारण करता है।

साहित्य की समीक्षा-:

जे० गाखर (2002) ने अपना शोध अध्ययन किया जिसमें सृजनात्मकता, समस्या समाधान तथा व्यक्तित्व का अध्ययन किया। इसमें आवासीय विद्यालय एवं गैर आवासीय विद्यालय में विद्यार्थियों के सात व्यक्त्वि कारकों तथा गणित विषय की उपलब्धि में सकारात्मक एवं सार्थक सहसबंध पाया गया। जबकि गैर आवासीय विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पाँच व्यक्तित्व कारकों तथा गणित विषय की उपलब्धि में सार्थक व सकारात्मक संबंध पाया गया है।

शाहीन परवीन इनाम उर रहीम (2013) हाई स्कूल के छात्रों में क्रिएटिविटी (रचनात्मकता) और पर्सनैलिटी (व्यक्तित्व) के बीच संबंध पर अध्ययन किया गया। डेटा का विश्लेषण मीन (औसत), स्टैंडर्ड डेविएशन, क्रिटिकल रेश्यो और को-एफिशिएंट ऑफ़ को-रिलेशन (सह-संबंध गुणांक) के ज़रिए किया गया। नतीजों पर चर्चा की गई और निष्कर्ष निकाले गए। अध्ययन के समग्र अवलोकन के आधार पर कुछ शैक्षिक निहितार्थ भी बताए गए हैं। यह शोध बहिर्मुखी (extroverts) और अंतर्मुखी (introverts) लोगों की क्रिएटिविटी के बीच किसी भी संबंध से इनकार करता है।

शर्मा, डॉ. के. एम. त्रिपाठी (2023) कॉलेज के छात्रों में पर्सनैलिटी ट्रेड्स (व्यक्तित्व के गुणों) और क्रिएटिविटी स्टाइल (रचनात्मकता की शैली) के बीच संबंध । इस अध्ययन में डेटा 'ब्रीफ-बिग-फाइव-पर्सनैलिटी-इन्वेंटरी-10' (जिसमें 10 सवाल हैं) और 'कॉफमैन डोमेन्स ऑफ़ क्रिएटिविटी स्केल' (K-DOCS) (जिसमें 50 आइटम हैं) जैसे सेल्फ-रिपोर्टेड मेज़र स्केल की मदद से इकट्ठा किया गया है। कॉलेज के छात्रों में पर्सनैलिटी ट्रेड्स और क्रिएटिविटी स्टाइल के बीच संबंध रिसर्च का एक अहम विषय है, जिसके लोगों के लिए महत्वपूर्ण मायने हैं। इस स्टडी में सभी स्ट्रीम के 130 कॉलेज छात्रों को शामिल किया गया, जिसमें जेंडर का कोई भेदभाव नहीं किया गया। बेहतर एनालिसिस के लिए रॉ स्कोर और कन्वर्टेड स्कोर पर पियर्सन कोरिलेशन टेस्ट एनालिसिस का इस्तेमाल किया गया। कुल मिलाकर, इससे पर्सनैलिटी और क्रिएटिविटी के बीच सकारात्मक संबंध का पता चला। यह अध्ययन व्यक्तिगत पर्सनैलिटी और रचनात्मक विशेषताओं का सम्मान और सराहना करने के साथ-साथ ऐसे हालात बनाने की ज़रूरत पर ज़ोर देती है जो कॉलेज के छात्रों में क्रिएटिविटी को बढ़ावा दें।

ब्रिएला क्रुम, विवियाना लेमोस और मारिया क्रिस्टीना रिचॉड (2028) ने व्यक्तित्व और रचनात्मकता पर अध्ययन किया। उन्होंने 9 से 13 वर्ष की आयु के, दोनों लिंगों के 359 स्पेनिश-भाषी स्कूली बच्चों के नमूने का मूल्यांकन किया। व्यक्तित्व का आकलन 'अर्जेंटीना प्रश्नावली ऑफ़ चिल्ड्रन्स पर्सनैलिटी' से किया गया। रचनात्मकता का मूल्यांकन इन उपकरणों का उपयोग करके किया गया: 'टोरेंस टेस्ट ऑफ़ क्रिएटिव थिंकिंग-फिगरल फ़ॉर्म B' और 'क्रिएटिव पर्सनैलिटी स्केल' । पियर्सन सहसंबंध और बहु-रेखीय प्रतिगमन से लगातार यह पता चला कि न्यरोटिसिज़्म का रचनात्मकता से नकारात्मक संबंध है, जबकि क्षमता (कम्पीटेंस) का सकारात्मक संबंध है। परिणामों से पता चला कि अधिक रचनात्मक बच्चों में कम असुरक्षा, चिड़चिड़ापन और मानसिक तनाव देखा गया; वे आगे चलकर अधिक स्वतंत्र, सक्षम और वातावरण की आवश्यकताओं को संभालने में भावनात्मक रूप से स्वयं को नियंत्रित करने वाले बने।

रोसा ऑरोरा चावेज़-ईकल (2007) ने रचनात्मकता और व्यक्तित्व के बीच अनेक संबंधों का अध्ययन किया। यहाँ उत्पादक और सफल अत्यधिक रचनात्मक व्यक्तियों में उपस्थित व्यक्तित्व लक्षणों और व्यवहारों का पता लगाया गया है। इन लक्षणों और व्यवहारों का मस्तिष्क की भिन्न सक्रियता तथा न्यूरोट्रांसमीटर प्रणालियों में आणविक आनुवंशिक विविधताओं के साथ संबंध भी खोजा गया, जिसने रचनात्मक व्यक्तित्व की कुछ तंत्रिका-जैविक आधारशिलाओं का संकेत दिया। अंत में, यह दर्शाया गया है कि कुछ विकासात्मक घटनाएँ व्यक्तित्व निर्माण और रचनात्मकता के परिपक्व होने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं, जिससे सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने हेतु कार्यक्रमों और नीतियों के निर्माण तथा क्रियान्वयन में विशिष्ट रणनीतियों की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

शोध का उद्देश्य- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के सृजनशीलता पर व्यक्तित्व के प्रभाव का पता लगाना।

शोध परिकल्पना- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर व्यक्तित्व का प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

शोध विधि-

प्रस्तुत शोध कार्य के प्रतिदर्शन का चयन रोहतास जिला बिहार के सभी माध्यमिक विद्यालयों में से 20 विद्यालयों का चयन जिला शिक्षा पदाधिकारी रोहतास के अनुमति के फलस्वरूप शोध कार्य प्रतिदर्शन के लिए विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों से सम्पर्क किया गया।

प्रतिदर्श - शोध के प्रतिदर्श के लिए 400 विद्यार्थियों का चयन किया गया है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र के 200 छात्र - छात्रा जो सामाजिक, आर्थिक, आधार पर सामान्य वर्ग 144, पिछड़ा वर्ग 124, अनुसूचित जाति 119, तथा अनुसूचित जाति की संख्या 113 है।

शोध उपकरण-:

व्यक्तित्व परीक्षण इनवेटरी- हिन्दी अनुवादित व्यक्तित्व मापन हेतु जलोटा एवं कपूर व्यक्तित्व इन्वेटरी का उपयोग किया गया।

परिणाम एवं विवेचना- :

प्रस्तुत उद्देश्य माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर लिंग, व्यक्तित्व के बीच अंतःक्रिया का प्रभाव का अध्ययन करना है। इसमें लिंग के आधार पर विद्यार्थियों को दो स्तरों में बांटा गया है, उनके व्यक्तित्व के आधार पर व्यक्तित्व के दो भागों में बांटा गया है, जिसमें अंतमुर्खिता एवं बहिमुर्खिता शामिल है व्यक्तित्व के ये दोनों आयामों पर विद्यार्थियों को स्तरीय किया।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आँकड़ों का विश्लेषण द्विमार्गीय सह प्रसरण विश्लेषण के 2x2 कारकीय डिजाइन द्वारा किया गया।

सारणी-1 : सृजनशीलता पर लिंग ,व्यक्तित्व के बीच अंतःक्रिया का प्रभाव का के संबंध में द्विमार्गी सह-प्रसरण विश्लेषण का प्रदर्शन

विचरण का स्रोत Source of Variance	df	**समायोजित वर्गों का योग**	**समायोजित माध्य वर्ग**	**F मान**
लिंग	1	9761.42	9761.42	44.62
व्यक्तित्व	1	327.40	327.40	1.60
लिंग × व्यक्तित्व	1	44.25	44.25	0.171
त्रुटि	393			
कुल	396			

सार्थकता स्तर (Level of Significance):0.05 स्तर पर F(1,393) = 3.86 , 0.01 स्तर पर F(1,393) = 6.76

सारणी-1 से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष में पाया गया लिंग का सृजनशीलता के लिए F का मान 44.62 है, जो 0.01 पर सार्थक है। इससे स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि छात्र एवं छात्राओं की सृजनशीलता समायोजित माध्यांक क्रमश: 103.40 एवं 109.70 पाया गया। जो दोनों में सार्थक अंतर को प्रदर्शित करता है। छात्राओं की तुलना में छात्रों की सृजनशीलता में कमी पायी गई है।

माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर व्यक्तित्व का प्रभाव-:

सारणी-1 से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर पाया गया कि व्यक्तित्व का सृजनशीलता के लिए समायोजित F का मान 1.60 है, जो 0.05 पर सार्थक नहीं है। इससे प्रमाणित होता है कि अंतर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व के माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की समायोजित माध्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है। यह सृजनशीलता को प्रभावित नहीं करती है। यहाँ पर व्यक्तित्व के विमा बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों की माध्यांक 114.02 तथा अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों का माध्यांक 117.01 पाया गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सृजनशीलता और व्यक्तित्व के बीच संबंध नहीं पाया गया। दोनों एक-दूसरों को प्रभावित नहीं करती है।

माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर लिंग, व्यक्तित्व के बीच अंतःक्रिया का प्रभाव-:

सारणी-1 से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर पाया गया कि लिंग, व्यक्तित्व के बीच अंत:क्रिया का सृजनशीलता के लिए समायोजित F का मान 0.171 है, जो 0.05 पर सार्थक नहीं है। इससे प्रमाणित होता है कि लिंग, व्यक्तित्व के बीच अंत:क्रिया सृजनशीलता को प्रभावित नहीं करती है। यहाँ पर व्यक्तित्व के विमा बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों की माध्यांक 114.02 तथा अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों का माध्यांक 117.01 पाया गया।छात्र एवं छात्राओं की सृजनशीलता समायाजित माध्यांक क्रमश: 103.40 एवं 109.70 पाया गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सृजनशीलता पर लिंग और व्यक्तित्व के बीच संबंध नहीं पाया गया। दोनों एक-दूसरों को प्रभावित नहीं करती है।

निष्कर्ष (Conclusion)-:

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर लिंग, व्यक्तित्व तथा उनके अंतःक्रियात्मक प्रभाव का अध्ययन करना था। द्विमार्गीय सह-प्रसरण विश्लेषण (ANCOVA) से प्राप्त परिणामों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए–

1. लिंग का प्रभाव सृजनशीलता पर महत्वपूर्ण पाया गया। छात्राओं का समायोजित माध्यांक (109.70) छात्रों के समायोजित माध्यांक (103.40) से अधिक था। इससे स्पष्ट होता है कि छात्राएँ छात्रों की अपेक्षा अधिक सृजनशीलता प्रदर्शित करती हैं।
2. व्यक्तित्व (अंतर्मुखिता एवं बहिर्मुखिता) का सृजनशीलता पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पाया गया। यद्यपि अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी विद्यार्थियों के माध्यांकों में कुछ अंतर दिखाई दिया, परन्तु यह अंतर सांख्यिकीय दृष्टि से सार्थक नहीं था।
3. लिंग एवं व्यक्तित्व के मध्य अंतःक्रियात्मक प्रभाव भी सृजनशीलता पर महत्वपूर्ण नहीं पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि सृजनशीलता पर लिंग का प्रभाव व्यक्तित्व के प्रकार के अनुसार परिवर्तित नहीं होता तथा व्यक्तित्व का प्रभाव भी लिंग के अनुसार भिन्न नहीं होता।

अतः समग्र रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनशीलता को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक लिंग है, जबकि व्यक्तित्व तथा लिंग-व्यक्तित्व की संयुक्त अंतःक्रिया का सृजनशीलता पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पाया गया। अध्ययन से यह भी संकेत मिलता है कि

छात्राओं में सृजनात्मक क्षमताओं के विकास की संभावना अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि अंतर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों प्रकार के व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों में सृजनशीलता का स्तर लगभग समान पाया जाता है।

संदर्भ सूची-:

गाखर, जे० (2002). आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता, समस्या समाधान योग्यता, व्यक्तित्व कारकों तथा गणित विषय की उपलब्धि का एक तुलनात्मक अध्ययन. अप्रकाशित शोध प्रबंध.

त्रिपाठी, के. एम., एवं शर्मा, डॉ. (2023). कॉलेज के छात्रों में पर्सनैलिटी ट्रेड्स (व्यक्तित्व के गुणों) और क्रिएटिविटी स्टाइल (रचनात्मकता की शैली) के बीच संबंध का अध्ययन. *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, 54(2), 45-56.

परवीन एवं रहीम (2013). हाई स्कूल के छात्रों में क्रिएटिविटी (रचनात्मकता) और पर्सनैलिटी (व्यक्तित्व) के बीच संबंध पर एक अध्ययन. *शिक्षा तरंग*, 11(4), 112-121.

Allport, G. W. (1987). *Personality: A psychological interpretation*. Holt, Rinehart & Winston. (Original work published 1937).

Chávez-Eakle, R. A. (2007). The creative personality: A neurobiological perspective. *Medical Hypotheses*, 69(4), 711-714. https://doi.org/10.1016/j.mehy.2007.02.026

Krumm, G., Lemos, V., & Richaud, M. C. (2028). Personality and creativity: An assessment in Spanish-speaking schoolchildren using CAPI, TTCT, and EPC. *Journal of Creative Behavior*, 62(1), 89-102.

Eysenck, H. J. (1952). *The scientific study of personality*. Routledge & Kegan Paul.

भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में योग एवं चेतना का सामान्य स्वरूप

प्रवीण कुमार पाण्डेय*

सारांशः–

'भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में योग एवं चेतना का सामान्य स्वरूप' योग दर्शन के माध्यम से योग, चित्तवृत्ति निरोध एवं चेतना की अवधारणा पर प्रकाश डालने का प्रयास है। इसका उद्देश्य योग के माध्यम से मन, शरीर तथा चेतना के परिष्करण एवं उसके परिमाण प्राप्ति को सामान्य रूप से प्रदर्शित करना है।

योग दर्शन भारतीय दार्शनिक परम्परा में अपना विशेष योगदान रखता है। हमारे जीवन में शरीर, मन, नैतिकता और आध्यात्म से सम्बन्धित सामान्य समस्याओं के समाधान हेतु योग एक वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक पथ प्रदर्शित करता है। आज के जटिल जीवन में मन पर पड़ने वाले अतिरिक्त तनाव, बोझ को कम करने, मन की चंचलता को साधने, चित्त की अस्थिरता को विराम देने, भय, विक्षेप और तमाम झंझावात में राहत देने का कार्य योग का अभ्यास है। योग के चिरकालिक ऐतिहासिक पक्षों से लेकर, सामान्य व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इसके द्वारा व्यक्ति में आत्मानुशासन एवं आत्मनियंत्रण की वृत्ति विकसित होती है जो साधक के शारीर एवं मन के स्वस्थ होने से लेकर आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपयोगी है। योग एकीकृत रूप से हमारे जीवन की समग्रता को बांधने एवं साधने का कारक है।

प्रमुख शब्दः– योग दर्शन, पतञ्जलि, चित्तवृत्तियां, चेतना, अभ्यास, गीता, अष्टांगयोग, कैवल्य।

भूमिकाः–

ब्रह्माण्ड की इस ज्ञात और प्रकट व्यवस्था पर विचार करने पर दो बातें अनिवार्य व सदैव समीचीन प्रतीत होती हैं। प्रथम कि यह सब स्वतः है या किसी स्रष्टा द्वारा? द्वितीय, कि इसका अवयव तत्व क्या है? एक है या अनेक? हम देखते हैं यह स्रष्ट जगत जड़–चेतन मय है, तो यह कौतूहल भी बना रहता है कि आदि तत्व, आत्मतत्व, परमतत्त्व कैसा है? यह जड़ है, चेतन है, मिश्रित है, क्या है? यह जिज्ञासा अपनी अनन्त यात्रा में निरन्तर गतिमान है। जिज्ञासा, चिंतन और ज्ञान की परम्परा में कुछ ऐसे भी विषय रहे जो पिण्ड से ब्रह्माण्ड के रहस्योद्घाटन में अव्यक्त, अप्रकट व अपरिभाषित थे। ऐसे अव्यक्त, अपरिभाषित को परिभाषित करने वाले प्रयास को दर्शन कहा गया। इस परम्परा में जिज्ञासुओं या दार्शनिकों ने जिन तत्वों व तथ्यों के उत्तर खोजे या खोजने के प्रयास किए उनमें आत्मबोध, आत्मसाक्षात्कार, अन्तर्ज्ञान विशिष्ट रहा है। इस विशिष्टता में भारतीय दर्शन न्यूनतम अभिव्यक्ति से अधिकतम वर्णन की परिपाटी का पालन करता हुआ जिस अव्यक्त को परिभाषित करने का पालन करता है उसे आत्म, परात्म, अद्वैत, परमतत्व आदि अनेक संज्ञा से विभूषित करता है तथा आत्म बोध या परात्म से एकाकार को ही जीवन का परम लक्ष्य बताता है। इस परम लक्ष्य तक पहुँचने की परम्परा में अनेक विद्वान दार्शनिकों व साधकों ने विभिन्न माध्यम से अनेक विधाओं को प्रकट किया है। इन सब में योग का विशिष्ट स्थान है।

महायोगी शिवजी से प्रारम्भ योग की यह यात्रा अनन्त है। आयुर्वेद के अनुसार ब्रह्मा से दक्ष को, इनसे अश्विनी कुमार को, इनसे इन्द्र को फिर भरद्वाज जी को प्राप्त हुई।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे ऽ ब्रवीत।।[1]

श्री गीता के अनुसार नारायण(विष्णु) से सूर्य को, सूर्य ने वैवस्वत मनु को, इक्ष्वाकु को व आगे क्रम में अन्य तपस्वियों को प्रदान किया तथा योगेश्वर श्री कृष्ण ने अर्जुन को दिया। याज्ञवल्क्य स्मृति, महाभारत में हिरण्यगर्भ को योग का प्रथम वक्ता कहा गया है। उन्होनें सनकादिक एवं विवस्वान को परम साक्षात्कार रूप योग का उपदेश दिया। इसी क्रम में कपिल, वोढु, पंचसिख आदि भी योग के साधक हुए। घेरण्ड संहिता, शिव संहिता व अन्य शैव दर्शनों में श्री शिव माँ पार्वती को योग उपदेश देते हैं। योग के अनेकानेक प्राकारों में

* सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, कमला राय महाविद्यालय, गोपालगंज।
मो०–7905665977, ईमेल– prvn7pndey9@gmail.com

वैदिक, जैन, बौद्ध, सूफी तथा अनेक अन्य मतों के साथ ज्ञान, भक्ति, कर्म, सहज, तंत्र–मंत्र, लय, हठ, भाव, राज, भावातीत, प्रेमयोग, हंस, सुरति, विपश्यना, कुण्डलिनी योग जैसी अनेक योग एवं ध्यान की नित्य नवीन प्रकट हो रही अन्यान्य पद्धति से हम सब परिचित हीं हैं। इस प्रकार योग की परम्परा हमें स्वरूप व प्रकार की दृष्टि से बहुत समृद्ध दिखती है। प्रकारान्तर से इसमें हमें कतिपय साम्य एवं वैषम्य भी दृष्टिगोचर है।

'योग' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के युजिर धातु से है जिसका अर्थ मिलन होना, जुड़ जाना, एक होना है। यहां यह व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक व आध्यात्मिक पक्षों के ऐक्य के साथ आत्मबोध से लिया गया है। योग की साधना पद्धति में महायोगी शिव से प्रारम्भ आदि परम्परा से लेकर अब तक की मान्यता में लगभग 700–800 सम्प्रदायों का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें उपनिषद (600–700 BC) श्री गीता (3000 BC) तथा पातञ्जल योग (300 BC) बताया गया है।

पतञ्जलि योग के मूल में शरीर सैष्ठव, मनोविज्ञान, तत्त्वज्ञान एवं आत्मानुभूति बताए गए हैं। पतञ्जलि योग सूत्र का प्रारम्भ 'अथ योगानुशासनम्[2]' से है अर्थात् यह जिज्ञासा, ज्ञान, सूचना मात्र का विज्ञान नहीं है अपितु अभ्यास है आत्मसात करने की विद्या है, अनुशासन है। उनके अनुसार 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः[3]' की दृष्टि से यह चित्त की वृत्तियों का निरोध है। मन, बुद्धि एवं अहंकार की समष्टि को चित्त रूप में बताते हुए कहा गया है कि चित्त में वासना व पूर्व कर्म संस्कार से निरंतर अनेक लहर उद्वेलित होती रहती हैं। इन्हें क्लिष्टवृत्ति जो अविद्या जनित है तथा दुःखदायी है और अक्लिष्ट जो विद्या जनित है व आनन्ददायक है के रूप में बांटा गया है। यह वृत्ति जब भोग–भाव से लिप्त होकर संसारोन्मुखी होती है तो कष्ट व बंधन का कारण बनती है तथा जब आत्मा की ओर होती है तो मुक्त होने में सहायक होती हैं। योग सूत्र में इनके पाँच प्रकार बताए गए हैं–

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः[4]।

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच चित्त की वृत्तियां बताई गई हैं। इन वृत्तियों का पूर्णतः निरोध ही योग का परम लक्ष्य है।

सांख्य–योग के अनुसार सृष्टि क्रम में चेतन पुरूष का जड़ प्रकृति से संयोग के कारण उत्पन्न महतत्त्व (चित्त) की एवं तदन्तर अन्य तत्वों की उत्पति होती है। इस संयोग की प्रतीति ही पुरूष का बंधन बताया गया है तथा प्रकृति जन्य सभी विकारों से विलग होकर आत्म स्वरूप में अवस्थित होना पुरूष का परम लक्ष्य 'कैवल्य'। इस परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु महर्षि पतञ्जलि द्वारा योग सूत्र नामक शास्त्र की रचना की गई जिसमें साधना के 8 सोपानों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के वृहद वर्णन द्वारा कैवल्य प्राप्ति का मार्ग प्रकाशित किया गया है। जिसके अनुशासन से साधक समाधि की सिद्धि को प्राप्त होता है। समाधि सिद्ध होने पर स्वरूप शून्यता आती है और उच्चतर चेतना का प्रादुर्भाव हो जाता है जहां शुद्ध चैतन्य पुरूष अज्ञान जन्य सभी संबंधों की प्रतीति से विलग होकर आध्यात्मिक, आधिदैविक व आधिभौतिक सभी दुःखों व बंधनों से मुक्त होकर परम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति से अपने शुद्ध चैतन्य में अवस्थित हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं अन्य दर्शनों में जिसे आत्मा, आत्म, जीव या चैतन्य तत्त्व आदि से सम्बोधित किया गया है, साँख्य योग में उसे आत्म, शुद्ध चैतन्य, ज्ञ, पुरूष या पुरूष विशेष कहा गया है।

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरूष विशेषः ईश्वरः।[5]

इस प्रकार साँख्य योग में चेतन तत्त्व (चेतना) को पुरूष से सम्बोधित किया गया है। चेतना का अध्ययन भारतीय दर्शन परम्परा में ज्ञान व तत्वमीमांसा को जानने की प्रागपेक्षा है। चेतना के स्वरूप को समझने में प्रश्न उठते हैं कि यह स्वतः प्रमा है या परतः प्रमा, सविषयक है या निर्विषयक है, साकार है या निराकार, द्रव्य है, गुण है, कर्म है, आत्मा है, जीव है, परमात्मा का अंश है या सबसे भिन्न कुछ अन्य ? इस क्रम में उपनिषदों में चेतना को आत्मा, विशुद्ध चैतन्य, ब्रह्म आदि पर्याय रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस चैतन्य स्वरूप परमतत्व को वैश्वानर स्थूल जगत जाग्रत अवस्था, हिण्यगर्भ/तैजस सूक्ष्म जगत– स्वप्ना अवस्था, प्राज्ञ–कारणलय सुषुप्ति अवस्था तथा तुरीय–निर्गुण के रूप में समझाया गया है। उपनिषदों में आत्मा व ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन ही प्रतिपाद्य है जिसकी अभिव्यक्ति तत्त्वमसि, अयं आत्मा ब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि जैसे महावाक्यों से है और किसी भी दशा में आत्मा या ब्रह्म चेतना मुक्त, चेतना शून्य, चैतन्य विहीन नहीं है। भारतीय दर्शन परम्परा में चार्वाक चैतन्य को शरीर का गुण मानता है तथा चार तत्वों के विशिष्ट संयोग से चेतना की उत्पत्ति स्वीकारता है। बौद्ध चेतना के प्रवाह को स्वीकारते हैं जैन आत्मा या जीव को चैतन्य युक्त मानते हैं। न्याय–वैशेषिक चेतना को आत्मा का आकस्मिक गुण बताते हैं। मीमांसकों में प्रभाकर भी

आकास्मिक गुण मानते हैं तथा कुमारिल चेतना एवं अचेतना का मिश्रण स्वीकारते हैं। इसके अतिरिक्त आदर्शवादी विचार में सांख्य–योग, अद्वैत एवं विशिष्टद्वैत में आत्मा चेतना युक्त है। साँख्य में यह 'चेतना' मात्र है पर श्री शंकराचार्य इसे 'आनंदमय चेतना' कहते हैं। रामानुज जीवात्मा को ब्रह्म का अंश मानते हैं।

यह चेतन तत्त्व के साथ यथार्थ ज्ञाता भी है। योग में चेतना को पुरूष का स्वभाव कहा है, पुरूष चैतन्य स्वरूप है। कैवल्यावस्था में भी चेतना का अभाव नहीं होता अपितु पुरूष अपने नित्य शुद्ध चैतन्य रूप से प्रकाशित होता है। चेतना पर अनेक रूपों व रूपकों का आश्रय लेकर चित, चैतन्य, चैत्य, आत्मा, जीव, परमात्मा व परमचैतन्य आदि संज्ञा से दर्शन, तंत्र, धर्म, आध्यात्म, मनोविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि द्वारा विशद वर्णन व शोध प्रस्तुत हुए हैं।

श्री गीता में श्री योगेश्वर कृष्ण कहते हैः–

मम योनिर्महिमद्‌बह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।[6]

अर्थात ''हे अर्जुन! मेरी महत् ब्रहमरूप प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतों की योनि है अर्थात गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतन रूप बीज का स्थापन करता हूँ। चैतन्य के विषय में आगे श्री कृष्ण कहते हैं–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।[7]

इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है। श्री गीता जी में साँख्य–योग का वाचन करते हुए श्री कृष्ण जी आत्मा को चैतन्य एवं स्वयं का अविनाशी अवध्य अंश बताते है –

देही नित्यमवध्योडयं देहे सर्वस्य भारत।[8]

इस प्रकार इस चेतन का जड़ की विलग प्रतीति ही चित्त–वृत्ति निरोध है यही 'अमनी–अवस्था है। कबीर इसे सुरति कहते हैं। योग सूत्र में चैतन्य की इस विशुद्ध अवस्था में अवस्थित होने हेतु कहा गया है–

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः[9]

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य को उसका आश्रय बताया है। किंतु यह आज के भौतिकवादी भोगानंदी साधारण मनुष्यों के लिए बहुत कठिन है ।

यद्यपि आज के इस दौर में योग के व्यावहारिक औचित्य पर विचारों का इतनी गहराई व गूढता में जा पाना सरल नहीं है तथापि योग के सोपानों को आत्मसात कर अभ्यास करने से जीवन के सभी क्रिया–कलाप तथा कर्म–कर्तव्य निवर्हन करने में निर्दोषिता व निर्लिप्ता का सार छिपा है। यदि एक उदाहरण से समझें तो आहार व अपनी स्वाद तृप्ति के लिए रोज करोड़ो जीवों को मारकर मांसाहार करना अनुचित प्रतीत होता है। जीवों की मृत्यु (हत्या) के समय उनकी तड़प (दर्द) से निकली आह रूपी दुःखद एवं नकारात्मक ऊर्जा तरंग का क्या प्रभाव होता होगा? इसी प्रकार संसार के संसाधनों का अपनी अतृप्त आवश्यकता पूर्ति हेतु हवस की दृष्टि से दोहन करना भी कितना भयावह वैश्विक दुस्परिणाम हमारे सम्मुख प्रकट कर सकता है? यह सबको सोचना चाहिए। अतः त्याग पूर्वक उपयोग की भावना से योगी का मार्ग चुनकर जीवन जीने की कला को सीखना और वैसे चलना सर्वहितकारी है। व्यावहारिक दृष्टि से यह भी योग साधना का अभ्यास है।

दैनिक जीवन में जीवन की अनेक भीतर–बाहर की समस्याओं के निदान हेतु चेतना का उत्थान कर योग का सहारा लेना लाभकारी है। साधन रूप में योग पद्धति को सरल–सहज ढंग से जन सामान्य के लिए व्यावहारिक बनाते हुए अपनाना यह हमारा योगदान लक्ष्य होना उपयोगी होगा। साथ ही योग पद्धति के व्यावहारिक पक्ष की रिक्तिता का अध्ययन करके उसकी पूर्ति का नवीन प्रयास हमें अलग आयाम दे सकता है।

इस प्रकार योग के स्वरूप की सामान्य समझ के साथ उसके उपयोग–महात्म्य को अंगीकार करके चेतना का उचित उत्कर्ष हमारे जीवन को सहज बनाते हुए अभीष्ट प्राप्ति करा सकता है। यह विश्वास हमें साधक के रूप में अग्रसारित करेगा जिससे जीवन के आन्तरिक–बाह्य तमाम द्वन्दों व अन्तर्कलह से चित्त निकलकर स्थिरता, सुख व शांति का अनुभव कर पाएगा।

योग हमारे जीवन में तन–मन की पुष्टता के साथ चेतना के उत्थान व आत्मसाक्षात्कार का सर्वोच्च साधन है। इनके प्रयोग से लौकिक–पारलौकिक उन्नति के द्वार खुलते हैं। हमें हमारे जीवन की तमाम व्यस्तताओं बाधाओं के मध्य इसे स्थान देकर इसके गहनतम, गूढ़तम एवं आंतरिक पक्षों की ओर भी अवश्य बढ़ना चाहिए। इस प्रकार हम पुरूषार्थ में धर्म, अर्थ काम की पूर्ति के साथ मोक्ष की ओर अग्रसर हो सकते

हैं। योग जैसे पथ का अवलंवन लेकर अपनी चेतना को ब्रह्ममय बना पाने का प्रयास निश्चित हमारे जीवन के लक्ष्य की सार्थकता सिद्द करेगा और साधक अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकेगा।

आज के परिवेश में योग सरल होता हुआ दैनिक जीवन में घुल मिल रहा है यह अपने परम उच्च लक्ष्य से थोड़ा नीचे उतर कर हमारे व्यायाम, ध्यान, प्राणायाम या अन्य व्यावहारिक क्रियाकलापों में शामिल होकर जीवन को सहज बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है। यहाँ नीचे उतरने से तात्पर्य श्री अरविन्द के विकासवाद में परमसत् के अज्ञान की ओर निमज्जन की भांति है। प्रथमतः 'योग' जिसके व्यावहारिक और सहज पक्ष हमारे लिए उपयोगी हैं उसको समझना समीचीन है। शेष क्रमिकता के आधार पर साधक को स्वतः अनुभूत होने लगेंगे।

यदि हम योग के अष्टांग अनुक्रम पर सूक्ष्म प्रकाश डालें तो पाते हैं कि योग के अनुसरण से आहार–बिहार की शुद्धता का अनुपालन स्वतः होने लगता है। योग का साधक योग के अष्टांगो के अन्तर्गत जब यम का क्रमिक अभ्यास करता है तो उसके बाह्य–आंतरिक आचरण, व्यवहार एवं संस्कार उत्कृष्ट होने लगते हैं–

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्याऽपरग्रिहा यमाः।[10]

आज हम ईर्ष्या, द्वेष प्रतिस्पर्धा की जलन में अंदर ही अंदर खत्म होते जा रहे हैं। नफरत और बदले की भावना से खुद भी जलते हैं और दूसरों को भी दुःख पुहँचाते हैं। पर यम के वास्तविक पालन से हम मनुष्यत्त्व की उच्च अवस्था की ओर अग्रसर होते हैं जहाँ करूणा, कल्याण एवं लोकहितकारी कर्म हमारी आदत बनने लगते है। शारीरिक, मानसिक बल के साथ निश्चयात्मक इच्छाशक्ति का निर्माण होने लगता है। यम का व्रत हमें सबके साथ जोड़ता है जहाँ हम किसी प्राणी को मन, वचन कर्म से कष्ट नहीं पहुँचाते हैं। सदैव सत्य का पालन करते हैं। बिना उचित श्रम के अपने हक के बिना वाली सम्पत्ति का भोग या सेवन नहीं करते हैं। ब्रह्म या सत्य ज्ञान का आचरण पालन करते हैं। अपनी आवश्यकता, उपभोग के नीयत पर नियंत्रण रखतें हुए अपरिग्रह का पालन भी करते हैं। ये सभी गुण जियो और जीने दो के सिद्धांत को बलवती बनाते हैं। इनके समुचित दीर्घकाल पालन से साधक में स्थिरता, योग्यता, करूणा के साथ दिव्यता का प्रसार होने लगता है फिर वह अन्य अष्टांगो के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार के अभ्यास से चेतना की उत्कृष्टता की ओर स्वतः प्रवृत्ति बढ़ती है।

इसी प्रकार साधक यम–नियमों से होता हुआ नित्य अपने अभीष्ट की ओर अग्रसर होता है। योग सूत्र में नियम के लिये कहा गया है–

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।[11]

इनके अनुपालन से साधक में आत्मबल विकसित होता है। उसकी दृढ़ता बढ़ती है। विकारी बंधन से क्रमिक रूप से त्याग की ओर भावना प्रबल होती है। साथ ही इन सब से ईश्वर प्रणिधान(शरणागति) साधक की विवेक ख्याति में उपयोगी सिद्ध होती है। ये क्रमिक चरण एक गूढ़ रहस्य को दर्शातें है जिनके विभिन्न आयाम को समझने से स्वतः ज्ञात होता जाता है कि किस प्रकार यह बाह्य से आंतरिक, स्थूल से सूक्ष्म, वैविध्य से एकत्व, शरीर से मन, मन से आत्मा और आत्म से परात्म की ओर हैं। इस प्रकार के निरन्तर तपपूर्ण अभ्यास से कायिक, मानसिक, ऐन्द्रिक सभी अशुद्धि का नाश होता जाता है तथा शरीर व इन्द्रियाँ अपने वश में (वशवर्तिनी) होती जाती हैं। फिर स्थिरतापूर्ण आसन अभ्यास से प्रयत्नशीलता में वृद्धि होती है। साधक श्वास व प्रश्वास को साध कर पूरक, कुम्भक तथा रेचक द्वारा प्राणायाम सिद्ध करता है। प्राणायाम से ज्ञान प्रकाश उद्भासित होता है और अन्य अगले 3 अन्तरंग भाग में प्रवेश होता है। यहाँ धारणा, ध्यान से होता हुआ साधक समाधि तक पहुँचता है और साधक के प्रज्ञा प्रकाश से अन्तर्चेतना का विकास होता है। चेतना का उत्कर्ष अकल्पित को भी प्रकट करने लगता है। जागृत चेतना का साधक सचेष्ट भाव से क्रियाशील होकर योग को जानने, समझने और धारण करने लगता है। योगाभ्यासी की सजग संवेदना सूक्ष्म से सूक्ष्म के प्रति उसकी सामञ्जस्यता बढ़ाने लगती है। व्यवहार में हम देखते हैं चेतना की उत्कृष्टता से साधक में समता एवं समरसता का भाव विकसित होता जाता है। यह अमूर्त तत्त्व है। हम इसे किसी अस्तित्वधारी के क्रिया कलाप, अवगतिपूर्ण व्यवहार, उच्च–निम्न आचरण, संकल्प की प्रकृति, स्वाभाविक प्रवृत्ति, लिप्तता या राग–द्वेष आदि भाव से ही समझते हैं। चेतना के स्तर से हमारे चित्त, चिंतन और बोध की गति व स्थिति निर्धारित होने लगती है। चेतना का कोई रूप–रंग, आकार, वजन आदि नहीं बताया गया है पर साधक में इसके सात्विक प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

निष्कर्षः–

चेतना के परिष्करण से साधक व्यष्टि से समष्टि की ओर स्वार्थ से परार्थ की ओर अग्रसर होता हुआ स्वयं में प्रतिष्ठित होने लगता है। जागृत चेतना के बोध से दमित, कुत्सित, सुसुप्त इच्छाओं और भावनओं का निराकरण तो होता ही है साथ ही साधक में आत्मसातीकरण व स्वीकार्यता का भाव भी विकसित होता है, परिणाम स्वरूप वह योगी प्रकृति के साथ सामञ्जस्य पूर्ण तादात्म्य स्थापित करते हुए सम्पोषणीय संस्कृति का संवाहक बन जाता है। अर्थात् किसी का अनिष्ट किए बिना अपने शुभ अभीष्ट को प्राप्त करने वाला हो जाता है। जागृत और उच्च चेतना का साधक किसी भी चीज के मूल और वास्तविक स्वरूप को देख पाता है जैसे श्री कृष्ण द्वारा दिव्य–दृष्टि से अर्जुन ने सब कुछ देखा। सामान्य दृष्टि से चेतना एक उलझी पहेली बन गई है। जिसे दर्शन में, धर्म में, चिकित्सा विज्ञान में, अलग–अलग ढ़ंग से समझा व परिभाषित किया जाता है।

परन्तु योग की उच्चतम अवस्था में परम चेतना की जागृत शुद्ध अवस्था पर पहुँचने पर सभी साधकों के मौन हो जाने की अवस्था होती है। इसे उपनिषदों में बताया गया है–

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।[12]

इसके अतिरिक्त योग में महामृत्यु, धर्ममेघ समाधि आदि का उल्लेख है जो अन्य रूप में एक गूढ़ विषय हो जाता है। यहाँ चेतना (पुरूष) का प्रकृतिजन्य गुणों से गुणशून्य होकर, आभासी लिप्तता से निर्लिप्त होकर शुद्ध चैतन्य स्वरूप में अवस्थित हो जाना परमपद कैवल्य बताया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीमद्भगवद् गीता, अध्याय 4, श्लोक–1, पृष्ठ–62
   (गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण–2078, मंडला–साइज।)
2. पातंजल योगसूत्र, समाधिपाद, सूत्र–1, पृष्ठ–11
   (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण तृतीय, 1997)
3. पातंजल योगसूत्र, समाधिपाद, सूत्र–2, पृष्ठ–12
   (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण तृतीय, 1997)
4. पातंजल योगसूत्र, समाधिपाद, सूत्र–6, पृष्ठ–42
   (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण तृतीय, 1997)
5. पातंजल योगसूत्र, समाधिपाद, सूत्र–4, पृष्ठ–40
   (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण तृतीय, 1997)
6. श्रीमद्भगवद् गीता, अध्याय 14, श्लोक–3, पृष्ठ–216
   (गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण–2078, मंडला–साइज।)
7. श्रीमद्भगवद् गीता, अध्याय 15, श्लोक–7, पृष्ठ–234
   (गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण–2078, मंडला–साइज।)
8. श्रीमद्भगवद् गीता, अध्याय 2, श्लोक–30, पृष्ठ–27
   (गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण–2078, मंडला–साइज।)
9. पातंजल योगसूत्र, समाधिपाद, सूत्र–12, पृष्ठ–22
   (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण तृतीय, 1997)
10. पातंजल योगसूत्र, साधनपाद, सूत्र–30, पृष्ठ–104
    (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण तृतीय, 1997)
11. पातंजल योगसूत्र, साधनपाद, सूत्र–32, पृष्ठ–106
    (रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, संस्करण तृतीय, 1997)
12. ईशादि नौ उपनिषद, कठोपनिषद, अध्याय–2, तृतीय वल्ली, मंत्र–10, पृष्ठ–164,
    (गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण–2070।)

हिंदी आलोचना में जेंडर पूर्वाग्रह

शिवानी*
कल्पना**

सार

जेंडर सामाजिक निर्मिति का ही रूप है जेंडर आधारित अवधाराणा भारत में पहले असमानता से ही मौजूद रही है यह आधुनिक सभ्यता की देन नहीं हैं बल्कि आधुनिक भारतीय संस्कृति मे विभिन्न प्रकार की यौन पहचानों के लिए कही अधिक व्यापक स्थान उपलब्ध था। महिलाओं के प्रति असमानता बढती हिंसा, परिवार व रोजगार जेंडर आधारित भेदभाव, जिसमें स्त्री की अस्मिता के ऊपर चर्चा की गई है। हिंदी आलोचना साहित्य में जेंडर आधारित आलोचना का स्थान सीमित है, उस पर चर्चा कि गई हैं।

बीज शब्द : हिंदी आलोचना, जेंडर पूर्वाग्रह, पितृसत्ता, स्त्री विमर्श, पुरुषवादी दृष्टिकोण, जेंडर संवेदनशीलता, देह और भाषा, सामाजिक संरचना

समाज में लिंग आधारित रुढिवादी सोच या असमानताएं एक दम से नही उपजती है इन्हें बोया जाता हैं हर इंसान के बचपन में ही माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्य, स्कूल और समाज के द्वारा इन्हें बोया जाता है। इस तरह प्रत्येक मनुष्य के बचपन से व्यस्क होने तक के सफर तक रूढ़िवादी, पितृसतात्मक सोच और इस तरह एक मनुष्य भरा पूरा पेड़ बन जाता है। यह बोया गया बीज है जेंडर पूर्वाग्रह।

जेंडर का संबंध लिंग से हैं आज भी जेंडर को लिंग ही माना जाता है। जिस तरह भाषा में शब्दों के वर्गीकरण के लिए उनके सामाजिक व्यवहार को आधार बनाया गया और उन्हें स्त्रीलिंग, पुल्लिंग व नपुसलिंक रूप में विभाजित किया गया, उसी प्रकार सामाजिक संरचना मे लिंग को सामयिक प्रक्रिया के

तहत स्त्री और पुरुष की निर्धारित भूमिकाओं में ढाला गया। स्त्री और पुरुष दोनों ही जैविक संरचना है यह सत्य हैं कि इन्हें बदला नहीं जा सकता। लेकिन इनकी पारिवारिक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक भूमिका का निर्धारण जब किया जाता है तो इनके अपने स्वतंत्र अस्तित्व पर प्रश्न अंकित हो जाता है, जिसका जवाब जेंडर पूर्वाग्रह देता हैं।

दुनिया भर में अधिक संख्या में लोग यह महसूस कर रहे हैं कि आधी आबादी के विकास के बिना मानव समाज की प्रगति नहीं हो सकती। महिलाओं के सामने कई तरह के जटिल मुद्दे हैं। इनके अलावा, दुनिया भर में कई संस्कृतियों में महिलाओं की स्थिति अभी भी दयनीय है। समाज में महिलाओं को लंबे समय से शारीरिक, मानसिक और वित्तीय बाधाओं के कारण कमजोर लिंग समूह के रूप में देखा जाता रहा है। हम एक पितृसत्तात्मक समाज में रहते हैं, जहाँ महिलाओं को ऐतिहासिक रूप से दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में माना जाता है, और उन्हें कई तरह के उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। हाल के दशकों में हुई सभी प्रगति के बावजूद, जेंडर आधारित समानता और न्याय की लड़ाई को अभी लम्बा रास्ता तय करना है। इसमें महिला और पुरुष दोनों समान रूप से शामिल हैं। इस अभिव्यक्ति का अर्थ दोनों लिंगो के लिए समान आधिकार की बात है।

यह नई सामाजिक व्यवस्था है जो महिलाओं को पुराने कानूनों, परम्पराओं और रीति-रिवाजों की बेडियों से मुक्त और स्वतंत्र करती है, जहाँ वे अपनी स्थिति के मामले में पुरुषों के अधीन रही हैं। पूरे देश में

* शोधार्थी– हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
** हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

महिलाएँ सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अधिकार के लिए लगातार संघर्ष कर रही हैं। आधुनिक समाज में चाहे उनकी वर्ग, जाति की भौतिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो पुरुषों के द्वारा फिर भी शोषण का सामना करना पड़ता हैं।

इसके अतिरिक्त उन्हें बलात्कार, अपहरण, व्यभिचार और विवाहित महिलाओं को बहकाने, पत्नियों और बच्चों की पिटाई, दहेज हत्या, कन्या भ्रूण हत्या से जुड़े अपराध, छेड़छाड़ और यौन उत्पीड़न के अन्य रूपों में हिंसा आदि का सामना करना पड़ता है। भारत के पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं पर पुरुषों के दीर्घकालिक प्रभुत्व को महिलाओं की प्रगति में भी बाधा का मुख्य कारण माना जाता है। महिलाओं की तस्करी, कार्य स्थल पर परेशान करने का प्रयास किया जाता है और उनके परिवारों और समुदायों में प्रताड़ित किया जा रहा है ये सब उनके लैंगिक पहचान के कारण है। जब लैंगिक पूर्वाग्रह की बात आती है, तो लगभग हर महिला को अपने जीवन में किसी न किसी तरह के भेद भाव का सामना करना पड़ता है। महिलाओं में अपने अधिकारों की जानकारी का अभाव इस व्यवहार का मुख्य कारण है। महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को खत्म करने और समान' समाज बनाने के लिए भारत में कई कानून पारित किए गए हैं। हालाँकि कई महिलाएँ अपने संवैधानिक अधिकारों से अनजान है, लेकिन बहुत कम महिलाएं अपने जीवन को नियंत्रित करने वाले कानूनों के बारे में जानती हैं । नतीजा यह होता है कि वे विभिन्न प्रकार के भेदभाव का शिकार होती हैं।

भारत में लैंगिक समानता की स्थिति को खराब श्रेणी में रखा गया हैं। 2030 एस.डी. जी जेंडर इंडेक्स के अनुसार दुनिया में 850 मिलियन से अधिक महिलाएं और लड़कियां ऐसे देशों में रह रही हैं जहां लैंगिक समानता की स्थिति बहुत खराब श्रेणी में है उत्पीड़न है वह केवल प्रकट हिंसा के रूप में ही नहीं दिखता अप्रकट हिंसा भी एक चीज पैदा हुई हैं और उसमें ये है कि जो लड़कियाँ आत्मनिर्भर हुई है, नौकरी पैशा में है उनके जीवन से घरेलू काम समाप्त नहीं हुआ है। उनका घरेलू श्रम अभी तक अवमूलित है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुषों को विशेष अधिकार है कि उनका श्रम मूल्यवान है। स्त्री का श्रम कम मूल्यवान है या नहीं है।

ये भी एक असमानता हो जो इस रूप मे परिलक्षित होती हो कि स्त्री बाहर अपनी पढाई लिखाई या उसकी जो बेहतरी हुई हैं उसके लिए उसे बाहर काम तो मिला है लेकिन पुरुष घर के काम को करने के लिए तैयार नहीं हो तो वो भी उसको संभालना पड़ता हैं इससे उस पर दोहरा भार पड़ता है। जिसका असर, उसके बच्चो तक पर पड़ता है। बच्चों को संभालना भी घरेलू श्रम का ही हिस्सा है। महिलाओं की सैलरी घर परिवार में ही खर्च कर दी जाती हैं यदि वह मना कर दे तो घरेलू कलह जैसी नौबत और किसी पुरुष का अपनी पत्नी से बात बात पर यह कहना कि तुम्हें क्या पता, तुमसे नहीं होगा जैसी बातें। घर के किसी भी बड़े से बड़े फैसले में उन्हें शामिल न किया जाना भावनात्मक शोषण का ही एक रूप हैं। देश भर में महिलाओं के खिलाफ हिंसा इतनी बढ़ रही हैं। यहां तक कि हिंसा के बाद न्याय व्यवस्था तक पहुंच पाने में महिलाएं आज भी असमर्थ हैं। दरअसल पुरुषों को आत्मदमन का शिकार नहीं होना पड़ता, स्त्रियों को कहीं न कहीं अपने-आप को सीमित करना पडता है! लैंगिक पूर्वाग्रह का कारण सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, कुछ भी कह लीजिए इसकी सारी जड़े समाज में ही है। जो सामाजिक यथार्थ है। भारतीय समाज में भी स्त्री को 'सेक्स ऑब्जेक्ट' के रूप में देखा व स्वीकारा गया जहाँ उसकी उपयोगिता पुरुष को खुश करने तक ही सीमित थी। ८०-९० के दशक में भारतीय स्त्रीवादी लेखन और स्त्रीवाद उपबंधों को हम पाते हैं। हिंदी आलोचना में जेंडर पर अभी भी बहस चल रही है। जिसमें कमला भसीन, उमा चक्रवर्ती, मैत्रयी कृष्णराज, शर्मिला रेगे और निवेदिता मेनन का नाम प्रमुख रूप से सामने आता हैं।

"कमला भसीन के अनुसार 'जेंडर सामाजिक-सांस्कृतिक रूप में स्त्री-पुरुष को दी गई परिभाषा है, जिसके माध्यम से समाज उन्हें स्त्री और पुरुष दोनों की सामाजिक भूमिका में विभाजित करता है। यह समाज की सच्चाई को मापने का एक विश्लेषणात्मक औजार है।"

"मैत्रयी कृष्णराज लिखती है समाज में जितनी भी आर्थिक और राजनैतिक समस्याएँ हैं उनका संबंध जेंडर से है। जेंडर आधारित श्रम का विभाजन है जिसे पितृसत्ता ने सामाजिक भूमिका में विभाजित करता है। जिसे पितृसत्ता ने सामाजिक अनुशासनों के द्वारा तय किया गया। जिसकी संकल्पना को परिवार और आर्थिक आधार पर खोजना अनिवार्य हो इसके अतिरिक्त जेंडर एक विश्लेषणात्मक श्रेणी है जो सामाजिक संरचना व उसके जटिल व्यवहारमूलक संबंधों को स्त्री-पुरुष के बीच के संबंधों से जानने का प्रयास करता हैं।"

"शर्मिला रेगे जेंडर को विचार की प्रक्रिया मानती है साथ ही ऐसा वर्ग है जिसमें कुछ संबंधों को रखा जाए और उनसे निर्मित संबंधों को जाना जा सके। उमा चक्रवर्ती भी सामाजिक संरचना को स्त्री की निर्मिती का कारण मानती है। स्त्री का परिवेश उसकी पराधीनता की प्रकृति को तय करता रहा है।"

प्रश्न उठता है कि स्त्री होना क्या है? जिसका जिक्र सिमोन भी करती हैं कि 'स्त्री पैदा होती नहीं बल्कि बनाई जाती है। सामाजिक नियमों व क्रियाओं के अनुरूप सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेद करना और एक को स्त्री और दूसरे को पुरुष रूप में सामाजिक

मान्यता देना जैसी सामाजिक प्रक्रिया के पीछे जो सामाजिक 'कंडीशनिंग 'काम करती है और जिसका प्रभाव संकोची, कमजोर, शांत, लज्जाशील व अन्य स्त्रियोचित गुणों में ढालने की प्रक्रिया से है जो प्राकृतिक नही सामाजिक प्रक्रिया के तहत होती हैं। सामाजिक आधार पर कंडीशनिंग के कारणों को जानना व उसका विश्लेषण जेंडर पूर्वाग्रह हैं।

स्त्री ने जब लिखना शुरू किया तो लिखने के साथ ही पहली प्रतिक्रिया उसे जेंडर विभेद की मिलती है। जहाँ लेखन को धमकाने के रूप में देखा जाता है। जेंडर के सामाजिक और राजनैतिक पहलू पर "सुधा सिंह लिखती हैं-जेंडर विमर्श राजनैतिक विमर्श है यह देशकाल वातावरण से अलग नहीं हो सकता है। जेंडर व्यवहार मूलक सामाजिक निर्मिती है, इसमें केवल स्त्री ही शामिल नहीं है पुरुष और स्त्री के समलैंगिक संबंध और उसकी जटिलताएँ भी शामिल हैं।"

स्त्रीवादी दृष्टि से जब कोई आलोचना लिखी जाएगी तो वो एक पितृसत्ता का विरोध प्रतिरोध करती हुई आएगी और हिन्दी समाज में जो वेधता आलोचना को जिस अकादमिक और बौद्धिक दायरे से मिलनी है वहां पर सारा का सारा पुरुष वर्चस्व है। इसलिए वो स्त्री आलोचना का इतना स्वागत नहीं कर सकते जिसको बदलने के लिए वे बिल्कुल तैयार नहीं है। इस समय पितृसत्ता रूप बदलकर कई तरह से आ गई है और स्त्री लेखिकाएँ भी बौद्धिक स्त्री भी उन्हें आज पहचान भी नहीं पा रही है। इसलिए जब उसे लगता हैं कि वह उनका विरोध कर रही है, तो वह उनके प्रपंच में फंसी हुई होती है। अब यह एक नयी लड़ाई है।

भले ही उनके नजरों में यह प्रतिरोध है, लेकिन वह दरअसल उनके ही जाल में फंस रही हैं। स्त्री आलोचना में भी स्त्री आलोचक जो स्त्री आलोचना करती है उनमें वो दृष्टि की स्पष्टता नहीं है। अभी भी जो मुख्य निर्णायक शक्तियां है उनकी तरफ से ज्यादा बढ़ावा उनको मिल रहा है, जो पितृसत्ता को सीधे-सीधे चुनौती न देकर अनुकुलन में ज्यादा है। लेकिन जो स्त्री पूरी महनत, पूरी तर्किता के साथ लिखेगी उसे प्रकाशन का मंचन न मिले अब डिजीटल युग में संभव नहीं रह गया है। "निवेदिता मेनन भी जेंडर को सामाजिक निर्मिती का ही रूप मानती है साथ ही उनका मानना है की जेंडर की यह अवधारणा भारत में पहले से मौजूद रही है यह आधुनिक सभ्यता की देन नहीं है बल्कि प्राक आधुनिक भारतीय संस्कृति में विभिन्न प्रकार की यौन पहचानों के लिए कहीं आधिक व्यापक स्थान उपलब्ध था मसलन उस काल में थर्डजेंडर के पास भी एक सामाजिक स्वीकार्यता मौजूद थी जो समकालीन समाज में नहीं है। "सूफी और भक्ति परम्पराएँ उभय लैंगिकता पर आधारित थी जो अकसर द्विलिंगी मॉडल को खारिज करते थे। भारतीय भाषाओं में इस तरह के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं जो यह बताते हैं कि भारत में लिंग और जेंडर के अंतर को स्पष्ट करता विचार पहले से मौजूद रहा हैं। वर्तमान समय में जब डिजिटल ने सबके लिए सबकुछ खोल दिया है, तो आदमी ऐसा प्रतिरोध

नहीं करेगा कि आप गलत कह रही है। बल्कि वह सिर्फ़ आपकी आवाज के चारों तरफ इतना चमचमाता हुआ सा शोर पैदा कर देगा कि आपकी आवाज अपने -आप खो जाए। इसलिए हम कह सकते हैं कि हमारे समाज में बढ़ती पितृसत्ता की अगुआई स्त्रियों को करनी पड़ेगी। अगर परिदृश्य खंगालेंगे तो पुरुष आलोचक भी बहुत नहीं आ रहे है। आलोचनात्मक विवेक ही बहुत कम हो गया है। गायब का मतलब है उसे आलोचनात्मक विवेक ही नहीं चाहिए। उसे बस अपनी कृति को लिखने के लिए शब्द चाहिए। यो आलोचना हम सच्ची दृष्टि से करते वह उसे नहीं चाहिए। इस समय जिस आलोचना विद्या की सबसे अधिक जरूरत इस पूरे परिवेश में कमजोर हो गई है। आलोचना साहित्य की ही है लेकिन वह एक खास बौद्धिक अकादमिक दायरे में रहती है। पसरना उसे समाज में है पर धीरे-धीरे पसरती है। इसलिए आलोचना, संस्थानो के निर्णायक मंडलो के ज्यादा मुठ्ठी में होती है, क्योकि उसके पास पाठक नहीं है। उसे डिजिटल युग में और आर्थिक बढावा दे दिया है। उग्र-पूँजीवाद और डिजिटल युग मिल के वह उपभोक्ता केंद्रित हो गया है। उपभोक्ता केंद्रित यदि कोई चीज होगी तो वह इतिहास बोध और भविष्योन्मुखता से 'कट' कर वर्तमान में शामिल रहती है और वहीं समाप्त हो जाती है। अब अगर कोई आलोचना से भी यहीं अपेक्षा करें तो वह किसी प्रकाशक की चैरी तो बन सकती है लेकिन वह आलोचना उन अर्थों में आलोचना नहीं बन सकती जिस आलोचना की हम बात कर रहें है।

निष्कर्ष

हिंदी आलोचना में जेंडर पूर्वाग्रह एक ऐतिहासिक सच्चाई है, जिसने साहित्य के सही मूल्यांकन को बाधित किया। हालांकि, समकालीन परिदृश्य में स्त्रीवादी दृष्टिकोण के समावेश ने इन पूर्वाग्रहों को काफी हद तक तोड़ा है। हिंदी आलोचना अब अधिक समावेशी, संवेदनशील और वस्तुनिष्ठ हो रही है, जो साहित्य में स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता और दृष्टिकोण को स्वीकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ

1- अग्रवाल, रोहिणी, स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प, २०११, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2- जैन, निर्मला, हिन्दी आलोचना की बसिवीं सदी, २००६, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
3- सुजाता, आलोचना का स्त्री पक्ष, २०२१, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
4- वर्मा, महादेवी, श्रृंखला की कडियाँ, १९४२, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
5- अग्रवाल, साधना, वर्तमान हिंदी महिला कथा लेखन और दांपत्य जीवन, १९९५, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6- त्रिपाठी, शशिकला, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, २०१७, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
7- राय, शशिकला, इस्पात में ढलती स्त्री, २०१२, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
8- शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, २०११, मेधा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
9- अग्रवाल, रोहिणी, स्त्रीवादी आलोचना का श्वेत पत्र, समालोचना प्रकाशन,
10- सिंह, सुधा, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, २००८
11- सेठी, रेखा, स्त्री कविता पहचान और द्वंद्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१९
12- सिंह, नामवर, इतिहास और आलोचना, राजकम प्रकाशन, नई दिल्ली, २०२५

विश्व–वन्धुत्व की भावना का प्रतीक है : वैदिक साहित्य

Vedic literature is the symbol of the spirit of universal brotherhood

डॉ. राम कृपाल*

सारांश :

संस्कृत साहित्य में वेद, उपनिषद, रामायण महाभारत एवं पुराण जैसे ग्रंथ भारतीय संस्कृति की गहरी समझ प्रदान करने की क्षमता रखते हैं ।वेद मानवजाति के प्राचीन इतिहास, सामाजिक रीति-रिवाज, सदाचार, धर्म-दर्शन इत्यादि ज्ञान के प्रामाणिक स्रोत माने गये हैं। अर्थववेद में भी गौरव-बोध की व्यापकता की परिचर्चा की गयी है; जो राष्ट्र निर्माण एवं नागरिकों के कर्तव्यों पर केंद्रित है, इसमें भूमि सूक्त (पृथ्वी सूक्त) को सम्मिलित किया गया है; जो सत्यनिष्ठा, ज्ञान एवं राष्ट्र के प्रति समर्पण जैसे गुणों के माध्यम से राष्ट्र के उन्नति की वकालत करते हैं। अर्थववेद में राजा-प्रजा के संबंधों, राजा-प्रजा का एक दूसरे के प्रति कर्तव्य एवं राष्ट्र, सुरक्षा, समृद्धि, जनकल्याण की विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। अथर्ववेद में 'पृथ्वी' को 'माता' के रूप में बताया गया है, जिससे भारत गौरव- बोध एवं कर्तव्य की भावना बलवती होती दिखाई पड़ती है। राष्ट्रीय एकता राष्ट्र के विकास हेतु नागरिकों के बीच परस्पर प्रेम-सहयोग एवं सद्भाव को महत्वपूर्ण कड़ी माना गया है। 'राजा' को राष्ट्र का 'सेवक' या राष्ट्रपुत्र के रूप में व्याख्यायित किया गया है न कि प्रशासक। व्यवस्था के रूप में राजा का मुख्य कार्य प्रजा का कल्याण एवं न्यायपूर्ण-शासन व्यवस्था की स्थापना करना है।मानव की यही राष्ट्रीय भावना राष्ट्र की उन्नति में अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। पृथ्वी, धर्म एवं भाषा से परे समस्त प्राणियों ऐसे धारण करती है जैसे वहाँ सभी प्राणी एक परिवार के सदस्य हों।

प्रस्तावना :

वेद मानव मात्र के लिए ही नहीं बल्कि चराचर जगत हेतु कल्याणकारी उपदेश है,जो देशकाल की सीमाओं से प्रभावित नहीं होता है।

वेदवाक्य राष्ट्रप्रेम, देश-सेवा एवं उत्सर्ग के प्रेरक हैं। वेद आर्यों के सर्वमान्य एवं अनुप्रमाणिक धार्मिक ग्रंथ हैं। वेदों में राष्ट्रीय भावना का समावेश है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते।।[1]

हमें मातृभूमि की सेवा करनी चाहिए 'उपसर्प मातरं भूमिम'[2] 'नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या'[3] मातृभूमि को नमस्कार है, पृथ्वी मातृभूमि या स्वदेश का पर्याय है। प्राणिमात्र को अपने राष्ट्र के प्रति सजग होकर नेतृत्व करना चाहिए, 'वयं राष्ट्र जागृयाम पुरोहिता:[4] अर्थववेद के भूमि सूक्त में ईश्वर ने यह उपदेश दिया कि अपनी मातृभूमि के प्रति माता सदृश भाव रखकर सदैव उसका सम्मान करना चाहिए—

सा नो भूमि विंसृजतां मा पुत्राय में पय:।[5]
भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।[6]

प्राणिमात्र को अपने मातृभूमि की रक्षा हेतु आत्म बलिदान कर देना चाहिए, ऐसा निर्देश वेदों से हमें प्राप्त होता है। यर्जुवेद के अनुसार राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य स्वतन्त्रता एवं स्वाधीनता है, जिससे व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्धारण स्वयं कर सके तथा राष्ट्र का दूसरा कर्तव्य जनकल्याण है, राष्ट्र को जनता की सुख-समृद्धि हेतु सदैव प्रयत्नशीन रहना चाहिए। किसी राष्ट्र की समृद्धि धन्य-धान्य एंव भौतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। ज्ञान एवं शिक्षा को यर्जुवेद में राष्ट्र निर्माण हेतु आवश्यकता बताया गया है। वैदिक साहित्य एवं समाज सभी वर्गों के बीच प्रेम एवं सौहार्द को बढ़ावा देने की बात पर बल देता हैं। ताकि सामाजिक एकता बरकरार रहे।

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'मातृभूमि एवं माता दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर बतलायी गयी हैं। हे मातृभूमि! तेरी सेवा करने वाले हम सभी स्वस्थ रहें। मातृभूमि की सुरक्षा एवं संरक्षा हेतु आत्मोत्सर्ग करने के लिए सदैव तत्पर रहें।विश्व के अन्य देश मानव की जन्मभूमि है; परंतु भारत मानवता की जन्मभूमि है। यहाँ जीवन को सुखमय बनाने का उपदेश दिया गया है—

* सहायक आचार्य, भारतीय भाषा विभाग (संस्कृत–भाषा), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र) मो. 9452466249, ईमेल : drramkripalv@gmail.com

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।"

बीज शब्द:भारतीय संस्कृति, नमो मातृे पृथिव्या, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी, सर्वे सन्तु निरामया।

शोध–प्रविधि :

प्रस्तुत शोध आलेख में विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक शोध-पद्धति का उपयोग कर निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाएँगे।

यर्जुवेद में राष्ट्र के सर्वांगीण विकास एवं विश्वकल्याण की कामना हेतु जनमानस को प्रेरित किया गया है; जिससे नागरिकों में एकता, त्याग, परोपकार की भावना को बढ़ावा दिया जा सके। राष्ट्र को विश्व कल्याण हेतु हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए। राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य स्वतन्त्रता एवं स्वाधीनता है, जिससे व्यक्ति अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण स्वयं कर सकें। सत्य, तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ एवं परोपकार जैसी धार्मिक एवं नैतिक भावनाओं को राष्ट्र के सर्वांग्रीण विकास हेतु आवश्यक माना गया है; जिसमें सभी प्राणियों के सुख-समृद्धि एवं शांति की कामना की गयी है—

'ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वं शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि॥'
ऊँ शांतिः, ऊँ शांतिः, ऊँ शांतिः॥[7]

वेद वाक्य के माध्यम से सभी प्राणियों में एकत्व की भावना स्थापित करने का प्रयास किया गया है—

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥[8]

चराचर जगत के प्रत्येक प्राणी में परमात्मा का वास है, एवं संपूर्ण विश्व एक परिवार के समान है। 'विश्वं भवत्येक नीऽम्' राष्ट्र कल्याण हेतु प्रत्येक व्यक्ति सौहार्द युक्त एवं मधुर भाषी होना चाहिए। परामर्श, सभा, विचार एवं उद्देश्य समान होने पर एक राष्ट्र ही परिकल्पना को साकार किया जा सकता है—

यद् वदामि मधुमत् तत् वदामि। यदीक्षे तद् वनन्तिमा॥[9]

राष्ट्र के कल्याण एवं प्रगति हेतु मानव का परिश्रमी होना नितान्तावश्यक है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी इच्छाशक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार परिश्रम करते हुए राष्ट्र की उन्नति में सहयोग प्रदान करना चाहिए। नवीन उद्योगों के द्वारा धन्य-धान्य में वृद्धि होती है, प्राणिमात्र की व्यक्तिगत उन्नति से ही राष्ट्र की उन्नति हो सकती है।राष्ट्र तथा समाज के उत्थान हेतु मानव को सदैव शुभ विचारों से युक्त मन को रखना चाहिए। मन जागृत एवं सुप्तावस्था में दूर तक चला जाता हैं, क्योंकि यह बहुत ही चंचल है। मन प्रकाश एवं ज्योतिस्वरूप है और संपूर्ण प्राणियों में छिपा हुआ, वह आत्म प्रकाशित नहीं होता; वह तो एकाग्र वुद्धि से देखा जा सकता है। एकाग्र वुद्धि का अभाव होने से आत्मा दिखाई नहीं देती है। अत: आत्मा दर्शन के प्रतिबंध का कारण समझ लेने पर उसके देखने का यत्न आरंभ किया जा सकता है—

दूरगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं, तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु।[10]

मानव के अंत:करण में मन एक प्रकार का प्रकाशपुञ्ज है, जो प्राणिमात्र को निरंतर आलोकित करता है, जिससे मानव की समस्त भावनाएँ जुड़ी रहती हैं, जो मनुष्य अपने मन को वश में करना जानता है उसके समस्त कार्य स्वयं सिद्ध होते चले जाते हैं। मन में उत्पन्न विचार ही भावी जीवन के आधार होते हैं; क्योंकि विचारों से ही व्यक्ति सज्जन एवं दुर्जन बनता है—

आ नो भ्रदा: क्रतवो यन्तु विश्वत:।[11]

संस्कृत साहित्य एवं वेदों में विश्व-शांति हेतु प्रार्थना की गयी है, क्योंकि शांति राष्ट्र के विकास में सहायक होती है। अतंरिक्ष, द्युलोक, पृथ्वीलोक, औषधि, वनस्पति, देवगण इत्यादि से शांति प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। जड़ एवं प्राणिमात्र के शांति प्राप्ति हेतु अभिलाषा की गयी है क्योंकि प्रकृतिजन्य विनाश को रोकना मानव के लिए असंभव है—

'द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥'

शांति के साथ ही व्यक्ति को निरंतर प्रकृति के विषय में सद्भाव रखना चाहिए। भारतीय साहित्य में बताया गया है कि कार्य कैसे सिद्ध होते हैं—

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथै:।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशांति मुखे मृगा:।। (नीतिशतकम्)

चराचर जगत में बिना परिश्रम के कोई भी कार्य संभव नहीं हो सकता है। मनुष्य को अपने उन्नति हेतु प्रगति पथ पर आगे बढ़ना चाहिए। विश्व कल्याण एवं प्रकृति हेतु मानव में मानवोचित गुणों का होना भी निनान्तावश्यक है, इन गुणों को धारण करता हुआ मनुष्य ही विश्व कल्याण के विषय में विचार कर सकता है- जो व्यक्ति हिंसक होता है, वह व्यक्ति समाज में न तो सम्मान प्राप्त करता है और न ही रहने का स्थान प्राप्त कर सकता है—

मा नो स्तोके तनये मा न आयो।
मा नो गोषु मा न अश्वेषु रीरिष:।।[12]

विश्वकल्याण के मूलतत्व शांति एवं अहिंसा है क्योंकि हिंसा मनुष्य को अशांत कर देती है— मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्।

वर्तमान समय की समस्याओं में आतंकवाद, बेरोजगारी, हिंसा, तानाशाही, रोगों का आक्रमण, महिला अत्याचार, भ्रष्टाचार इत्यादि असाध्य समस्यायें दिखाई पड़ रही है। इन सभी समस्याओं का व्यवस्थिति एवं स्थायी निदान वैदिक साहित्य के पास है, जिसमें मानव मन को शांति एवं सकारात्मक मार्ग की तरफ ले जाने की क्षमता है—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्'

सकारात्क कर्मशीलता व्यक्ति को नकारात्मक उथ-पुथल से बचा लेती है,क्योंकि व्यक्ति को कर्तव्य प्रति सदैव संवेदनशील रहना चाहिए। कर्मशील व्यक्ति कभी भी बेरोजगार नहीं रह सकता। अंत:करण की शक्ति हेतु हमें वेदों के नैतिक मूल्यों को समझना होगा; जो संतोष धैर्य एवं कर्म पर आरुढ़ होने की शिक्षा प्रदान करते हैं—

"सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं, सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति" (ऋग्वेद1/91/20)

वेदों में धुलोक को पिता तथा पृथ्वीलोक को माता कहा गया है। पृथिवी माता अमृत सदृश जल इत्यादि देकर मानव-जाति का पोषण करती हैं, सूर्य प्रकाश प्रदान कर पोषण में सहायता प्रदान करते है, चंद्रमा की किरणें शीतलता प्रदान करती हैं।वेदों का कथन है कि राष्ट्र हित चाहने वाले व्यक्ति को दुर्गणों का परित्याग कर देना चाहिए—

मा नो निद्रा ईशत् मोतजल्पि:। सुवीरासो विदथमा वदेम्।।[13]

ईर्ष्या, क्रोध, मद्यपान, चरित्रहीनता, इत्यादि दुर्गणों का परित्याग करना चाहिए क्योंकि ईर्ष्या-प्राप्त व्यक्ति कभी भी शांतिपूर्वक बैठ नहीं सकता और न ही कोई उचित प्रकार से कार्य कर सकता है। क्रोध के प्रभाव से व्यक्ति इतना उन्मुक्त हो जाता है कि उसे अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध ही नहीं हो सकता है तथा उचित निर्णय भी नहीं ले सकता है। यदि एक भी दुर्गण मानव में है तो उसको समूलनाश हेतु पर्याप्त है—

उलूकयातुं शुशुलुकयातुं जहि श्वयानुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत् गृध्रयातुं वृषदेव प्र मृण: रक्ष इन्द्र:।।[14]

राष्ट्र कल्याण हेतु वेदों में नारियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। नारी संतानों को जन्म देती हैं, अतएव सृष्टि स्वरूपा हैं। संतान को ज्ञान देने के कारण वह ब्रह्म के समान बतायी गयी हैं। ऋग्वेद में नारी को गृह कहा गया है—

न गृहं गृहमित्याहु:, गृहिणी मृहमुच्यते।

अथर्ववेद में कहा गया है कि पति-पत्नी को संयुक्त रूप से यज्ञ करना चाहिए—

यतस्त्रुचा मिथुना या सर्पयत:।
भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते।। (अथर्ववेद 20/25/03)

राष्ट्र के कल्याण एवं गौरव में वृद्धि हेतु नारी शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वेदों में मानव को निरोगी होना नितान्तावश्यक बताया गया है, क्योंकि निरोगी मनुष्य सदैव प्रसन्नचित रहता है और प्रसन्न व्यक्ति ही राष्ट्र के हितार्थ चिंतन कर सकता है—

यथा समसद् द्विपदे चतुष्पदे।
विश्वं पुष्टं ग्रामेऽस्मिन् अनातुरम्।।[15]

राष्ट्र को समृद्ध बनाना है तो जनसंख्या पर भी नियंत्रण करना होगा ऐसा वेदों में निर्देश प्राप्त होता है—

'असबाधं मध्यतो मानवानाम्' (अथर्ववेद, 12/01/04)

बहुत सी संतानों को उत्पन्न करने वाला गृहस्थ या राष्ट्र अत्यंत कष्ट या दुर्गति को प्राप्त करता है। मनीषियों ने भारतभूमि की श्रेष्ठता को आधार बताकर मातृभूमि को अत्यंत आदरणीय माना है। इसी वैशिष्ट्य को विष्णु पुराण में उद्धृत किया गया है—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने:।
यतो हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमय:।।[16]

वेदों एवं उपनिषदों मे ऐसे अनेक मंत्र उपलब्ध होते हैं जो सह-अस्तित्व, विश्व-बन्धुत्व, लोक कल्याण, सर्वोदय, विश्वशांति की भावना से परिपूर्ण दिखायी पड़ते हैं। तैतरीयोपनिषद् की शिक्षाबल्ली में भी शांति की भावना अनुस्यूत होती है—

ओइम् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु मा। विद्विषावहै ओइम् शांति: शांति: शांतिः

मानव का जीवन शांति सामर्थ्य से परिपूर्ण हो, ऐसी कामना की गयी है। वृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित 'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय' इस मंत्र के माध्यम से संपूर्ण जीवन को सुखमय बनाने हेतु शिक्षा दी गयी है। तैतरीयोपनिषद् में प्रतिपादित सत्यंवद्, धर्मंचर, स्वाध्यायान्मा प्रमद: मातृदेवो भवं। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। माता-पिता के प्रति पुत्र का कतर्व्य आचार्य के प्रति शिष्यों को कर्तव्य-बोध की शिक्षा दी गयी है। कर्तव्यपालन की शिक्षा भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवतगीता में दिया है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' कर्म पर ही व्यक्ति का अधिकार है उसके फल पर कभी नहीं। अधिकार प्राप्ति हेतु निस्वार्थ होकर निरंतर कर्तव्य पथ पर चलने की प्रेरणा दी गयी है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरा: ॥ (ईशावास्योपनिषद्)

व्यक्ति को अपेक्षा से नहीं बल्कि त्याग की भावना से कार्य करना चाहिए। त्याग की भावना से कार्य करने निर्देश हमें उपनिषदों से प्राप्त होता है— ईशावास्योपनिषद् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्यस्विद् धनम् ॥ (ईशावास्योपनिषद्)

राष्ट्र की वैदिक अवधारणा वस्तुत: 'बसुधैवकुटुंबकम्' की परिकल्पना पर आश्रित है, जिसमें प्राणिमात्र के प्रति उदारतापूर्ण भावना का पूर्णरूपेण समावेश दिखाई पड़ता है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।। (यर्जुवेद 40/6)

प्राणिमात्र को राष्ट्र कल्याण हेतु निरंतर तत्पर रहना चाहिए। प्राणिमात्र को 'सत्यंवद् धर्मं चर' का अनुपालन करना चाहिए—

'सत्यमेव जयते नानृतम्' (मुण्डकोपिनषद् 03/01/06)

मनुस्मृतिकार ने मानवीय कर्तव्यों की अभिव्यक्ति हेतु उपार्जित तत्वों की परमावश्यकता पर बल दिया है—

वेदऽलिखो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद् विदाम्।
आचारश्चैव साधूनंमात्मतुष्टिरेव च।। (मनुस्मृति2/6)

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के भाव से युक्त होकर मातृभूमि की सेवा करनी चाहिए। समष्टि हित हेतु व्यक्तिगत हितों का परित्याग कर देना चाहिए। यर्जुवेद में राष्ट्र का सर्वसुख एवं कल्याणप्रद कहकर राष्ट्र संर्वधन की भावना का उद्देश्य दिया गया है। भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है, यहाँ सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखा जाता है। अथर्ववेद का यह मर्म सुपष्ट करता है कि विविध प्रकार भाषाएँ बोलने वाले, नानाधर्मावलम्बी, भिन्न प्रकार के प्राणियों को धारण करने वाली पृथ्वी चंचलता से रहित एवं स्थिर गाय के समान धन की सहस्रों धाराएँ प्रवाहमान होती हैं।वेदों में पारस्परिक स्नेह, सौहार्द एंव समानता की कामना की गयी है। परिवार को राष्ट्र की मूल ईकाई बताया गया है। यदि परिवार में शांति एवं प्रेम है तो समाज में शांति व्याप्त होगी। परिवार में यदि क्लेश, कलह, द्वैष, वैमनस्य, ईर्ष्या नहीं होगी तो राष्ट्र में सर्वत्र सुख-शांति एवं सौहार्द का वातवारण कायम रहेगा। एक श्रेष्ठ एवं आदर्श राष्ट्र में सुख-शांति तभी रह सकती है, जब उस राष्ट्र के पास पर्याप्त जल संसाधन, वनस्पतियाँ, गोधन इत्यादि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो। जहाँ शिल्पी उद्यमी कृषक, वैज्ञानिक संगठित होकर कार्य करते हैं। वेदों में राष्ट्र का स्वरूप इस प्रकार अभिव्यंजित होता है—

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृषय: सम्बभूव:।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि: पूर्वपये दधातु।। (अथर्ववेद 12/01/3)

राष्ट्रकल्याण में सहभागिता के स्वस्थ्य होना नितान्त आवश्यक है। वेदों में निर्दिष्ट है कि प्रात:काल में सूर्यदेव अमृत की वर्षा करते हैं जिससे समस्त रोगों का समूलनाश होता है—

उदयन्त सूर्योनुदतां मृत्युपाशान्।
हृदरोगं मम सूर्य: हरिणाम् च नाशय:।। (अथर्ववेद 1/5/4)

निष्कर्ष –

राष्ट्र के लिए राजा का होना कितना आवश्यक है,इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में मार्कंडेय ऋषि वशिष्ठ आदि मुनियों को राष्ट्रध्यक्ष की महत्ता बता रहे हैं- 'अराजक राष्ट्र में मत्स्य न्याय का सिद्धांत सर्वत्र दिखाई पड़ता है। तत्कालीन समय में राजा के लिए राष्ट्रधर्म से बढ़कर कोई कर्तव्य नहीं था। बलशाली एवं समर्थ सदैव कमजोर एवं असमर्थ लोगों पर अत्याचार करते हैं, जिससे सर्वत्र अराजकता फैल जाती है। राजा स्वयं प्रजा की माता-पिता के समान रक्षक एवं पोषक होती है। वेदों में शिक्षाएँ विश्ववन्धुत्व एवं विश्व के अभ्युदय के साधक एवं पोषक होती हैं। भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। सभ्यता एवं संस्कृति ही व्यक्ति को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करती हैं, जिससे जीवन में सुख-शांति-आनंद की प्राप्ति होती है 'विश्व-वन्धुत्व की भावना का प्रतीक है : वैदिक साहित्य' ऐसा भाव दिखाई देता है। राष्ट्रीय एकता राष्ट्र के विकास हेतु नागरिकों के बीच परस्पर प्रेम-सहयोग एवं सद्भाव को महत्वपूर्ण कड़ी माना गया है। 'राजा' को राष्ट्र का 'सेवक' या राष्ट्रपुत्र के रूप में व्याख्यायित किया गया है न कि प्रशासक। व्यवस्था के रूप में राजा का मुख्य कार्य प्रजा का कल्याण एवं न्यायपूर्ण-शासन व्यवस्था की स्थापना करना है। 'वेद' विश्व कल्याण तथा विश्वबंधुत्व की भावना का प्रतीक माना गया हैं—

अयं निज: परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकं।।

सहायक ग्रंथ तालिका

1. संज्ञान सूक्त, 10/12/12
2. ऋग्वेद 10/18/10
3. यजुर्वेद 9/22
4. यजुर्वेद 9/23
5. अथर्ववेद 12/01/10
6. अथर्ववेद 12/01/03
7. शुक्ल यजुर्वेद 36/17
8. ऋग्वेद 10/09/03
9. अथर्ववेद 12/01/52
10. यजुर्वेद 34/1
11. ऋग्वेद 1/39/2
12. यजुर्वेद 12/70/12
13. ऋग्वेद 03/48/14
14. ऋग्वेद 07/104/22
15. ऋग्वेद 01/114/01
16. विष्णु पुराण 2/22

सतत विकास के संदर्भ में गांधीवादी विचारों की समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. रवि शंकर कुमार चौधरी*

सारांश

महात्मा गांधी के विचार आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक हैं, विशेषकर सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में। वर्तमान समय में विश्व जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन तथा आर्थिक असमानताओं जैसी गंभीर समस्याओं का सामना कर रहा है। ऐसे समय में गांधीजी का सादगी, स्वावलंबन, ग्राम स्वराज, अहिंसा तथा नैतिक जीवन पर आधारित दर्शन मानवता को एक संतुलित और टिकाऊ विकास की दिशा प्रदान करता है। गांधीजी का मानना था कि प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है, लेकिन किसी एक व्यक्ति के लालच की नहीं। यह विचार आज की उपभोक्तावादी संस्कृति के लिए एक महत्वपूर्ण चेतावनी है।

गांधीजी ने औद्योगिक सभ्यता की अंधी दौड़ का विरोध करते हुए स्थानीय उत्पादन, कुटीर उद्योग और स्वदेशी को बढ़ावा दिया। उनका मानना था कि विकास का उद्देश्य केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और पर्यावरणीय संतुलन भी होना चाहिए। आज "सस्टेनेबल डेवलपमेंट" की जो अवधारणा विश्व स्तर पर स्वीकार की जा रही है, उसकी मूल भावना गांधीवादी चिंतन में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

डिजिटल युग और वैश्वीकरण के दौर में गांधीजी के विचार नई पीढ़ी को नैतिकता, सह-अस्तित्व और जिम्मेदार नागरिकता का संदेश देते हैं। गांधीवादी जीवन-दर्शन केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि विश्व शांति और मानव कल्याण के लिए एक सार्वभौमिक मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। इसलिए आवश्यकता है कि गांधीजी के विचारों को आधुनिक संदर्भों में पुनः समझा जाए और उन्हें नीति निर्माण तथा सामाजिक जीवन में प्रभावी रूप से लागू किया जाए। यह अध्ययन गांधीवादी सतत विकास की अवधारणा की समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।

कुंजी शब्द–गांधीवाद, सतत विकास, ग्राम स्वराज, पर्यावरण संरक्षण, स्वदेशी

प्रस्तावना

भारत का स्वतंत्रता संग्राम विश्व इतिहास के सबसे व्यापक जन आंदोलनों में से एक था। यह केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का संघर्ष नहीं था, बल्कि सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा का आंदोलन भी था। इस संघर्ष में देश के छोटे-छोटे गांवों और दूरस्थ क्षेत्रों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लाखों साधारण भारतीयों ने अपनी दिनचर्या छोड़कर स्वराज की लड़ाई में हिस्सा लिया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले इस आंदोलन ने पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधा और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन की नींव रखी।

आज, इक्कीसवीं सदी में मानवता एक नए प्रकार के संकट का सामना कर रही है। आधुनिक विश्व की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक सतत विकास की अवधारणा है। стрем стрем से बढ़ता जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का तेजी से ह्रास, प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, प्रदूषण की विकराल समस्या और बढ़ती आर्थिक असमानताओं ने सम्पूर्ण मानव सभ्यता को गंभीर संकट में डाल दिया है। विकसित और विकासशील देश दोनों ही पर्यावरणीय असंतुलन, संसाधन संकट तथा सामाजिक विभाजन की चुनौतियों से जूझ रहे हैं। ऐसे में विकास की पारंपरिक मॉडल — जो केवल जीडीपी वृद्धि और औद्योगिक उत्पादन पर केंद्रित है — अब अपर्याप्त और खतरनाक साबित हो रहा है।

इसी संदर्भ में महात्मा गांधी का चिंतन, जो लगभग सौ वर्ष पहले प्रस्तुत किया गया था, आज अत्यंत प्रासंगिक और दूरदर्शी प्रतीत होता है। गांधीजी ने विकास को कभी भी केवल आर्थिक संकेतकों तक सीमित नहीं माना। उनके लिए विकास का अर्थ था समग्र मानवीय विकास — जिसमें आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ नैतिक मूल्य,

* सहायक प्राध्यापक (सीनियर स्केल) एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, टी.एन.बी. कॉलेज, भागलपुर, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, ई–मेलः drravitnb@gmail.com

सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय गरिमा भी शामिल हो। उन्होंने औद्योगिक पूंजीवाद की अंधी दौड़ की तीखी आलोचना की और बार-बार यह चेतावनी दी कि "प्रकृति हमारी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है, लेकिन लालच को नहीं।" यह कथन आज के सतत विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals - SDGs) की मूल भावना को पूरी तरह प्रतिबिंबित करता है।

गांधीजी का मानना था कि सच्चा विकास वही है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करे बिना भविष्य की पीढ़ियों के संसाधनों को नष्ट किए। उन्होंने ग्राम स्वराज, स्वदेशी, कुटीर उद्योग, अहिंसा और सरल जीवन शैली पर आधारित एक ऐसे विकास मॉडल की कल्पना की जो पर्यावरण के साथ सामंजस्य बिठाए और मनुष्य को प्रकृति का शोषक न बनाकर उसका संरक्षक बनाए। उनका दर्शन उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध एक मजबूत नैतिक विकल्प प्रस्तुत करता है।

वर्तमान समय में जब पूरी दुनिया जलवायु संकट, प्लास्टिक प्रदूषण, वन विनाश और असमान विकास से जूझ रही है, गांधीजी के विचार न केवल भारत के लिए बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए एक मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। उनका चिंतन हमें याद दिलाता है कि विकास की राह नैतिकता, संयम और सह-अस्तित्व पर चलनी चाहिए।

इस प्रकार, गांधीवादी दर्शन सतत विकास की अवधारणा को एक ठोस नैतिक और व्यावहारिक आधार प्रदान करता है। यह अध्ययन गांधीजी के विचारों की समकालीन प्रासंगिकता को विस्तार से समझने का प्रयास करता है।

साहित्य समीक्षा

- **चंद्र, बिपन. (2009). आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।** बिपन चंद्र ने अपनी पुस्तक में महात्मा गांधी के आर्थिक विचारों को सामाजिक न्याय की दृष्टि से विश्लेषित किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि गांधीजी औद्योगिक पूंजीवाद की आलोचना करते हुए ग्रामीण अर्थव्यवस्था, स्वदेशी और कुटीर उद्योगों पर आधारित विकास मॉडल की वकालत करते थे। चंद्र के अनुसार गांधी का दृष्टिकोण केवल आर्थिक वृद्धि पर नहीं, बल्कि सामाजिक समानता और अंतिम व्यक्ति के उत्थान पर केंद्रित था। यह पुस्तक सतत विकास के संदर्भ में गांधीवादी आर्थिक चिंतन को समझने के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। (७१ शब्द)
- **गुहा, रामचंद्र. (2018). गांधी: द इयर्स दैट चेंज्ड द वर्ल्ड. नई दिल्ली: पेंगुइन रैंडम हाउस।** रामचंद्र गुहा ने इस जीवनी में गांधीजी के पर्यावरणीय चिंतन को विस्तार से उजागर किया है। उन्होंने गांधी को आधुनिक पर्यावरणवाद का पूर्ववक्ता बताया है, जिन्होंने प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन और संसाधनों के संरक्षण पर बल दिया। गुहा के विश्लेषण में गांधी का औद्योगिक सभ्यता विरोध और सरल जीवन का आदर्श आज के जलवायु परिवर्तन और सतत विकास की चुनौतियों के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। यह कृति गांधीवादी पर्यावरण दर्शन की गहराई को समझने में सहायक है। (७२ शब्द)
- **दासगुप्ता, अजित. (1996). गांधी इकोनॉमिक्स. नई दिल्ली: ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।** अजित दासगुप्ता ने गांधीजी के आर्थिक विचारों का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। पुस्तक में स्वदेशी, ग्राम स्वराज और कुटीर उद्योगों को सतत आर्थिक मॉडल के रूप में प्रतिपादित किया गया है। दासगुप्ता के अनुसार गांधी का अर्थशास्त्र उपभोक्तावाद और केंद्रीकृत औद्योगीकरण के विरुद्ध था तथा यह पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक न्याय को एक साथ जोड़ता है। यह ग्रंथ सतत विकास की अवधारणा को गांधीवादी दृष्टिकोण से समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है। (६९ शब्द)
- **शिवा, वंदना. (2005). अर्थ डेमोक्रेसी. नई दिल्ली: साउथ एंड प्रेस।** वंदना शिवा ने अपनी पुस्तक में गांधीवादी पर्यावरणवाद को आधुनिक संदर्भ में जोड़ा है। उन्होंने गांधीजी के स्वदेशी और प्रकृति-केंद्रित विकास मॉडल को जैव विविधता संरक्षण, जैविक कृषि और महिलाओं के सशक्तिकरण से जोड़कर प्रस्तुत किया है। शिवा के अनुसार गांधी का दर्शन आज की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण और पर्यावरणीय विनाश के विरुद्ध एक मजबूत वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है। यह पुस्तक सतत विकास में गांधीवादी विचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। (७० शब्द)
- **सरीन, माधव. (2012). सस्टेनेबल डेवलपमेंट एंड गांधी. नई दिल्ली: टेरी प्रेस।** माधव सरीन ने इस पुस्तक में सतत विकास की अवधारणा और गांधीवादी दर्शन के बीच प्रत्यक्ष संबंध स्थापित किया है। उन्होंने

विस्तार से बताया है कि गांधीजी का ग्राम स्वराज, अहिंसा और संयमपूर्ण जीवन आज के सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स (SDGs) की मूल भावना से मेल खाता है। सरीन के अनुसार गांधी का चिंतन आर्थिक विकास को पर्यावरणीय संतुलन और सामाजिक न्याय के साथ जोड़ता है। यह अध्ययन नीति-निर्माण और शैक्षणिक क्षेत्र के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

गांधीवादी चिंतन और सतत विकास

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी ने औद्योगिक सभ्यता की तीखी आलोचना की। उन्होंने मशीनों के अंधाधुंध उपयोग का विरोध किया क्योंकि इससे बेरोजगारी बढ़ती है और प्रकृति का शोषण होता है। उनका स्वदेशी आंदोलन स्थानीय संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्था का प्रतीक था, जो आज सर्कुलर इकोनॉमी और 'लोकल फॉर लोकल' की अवधारणा से मेल खाता है। गांधीवादी चिंतन सतत विकास की अवधारणा को नैतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय आयाम प्रदान करता है।

- **औद्योगिक सभ्यता की आलोचना**: गांधीजी ने पश्चिमी औद्योगिक मॉडल को 'शोषणकारी' बताया। उनके अनुसार अंधाधुंध औद्योगीकरण कुछ पूंजीपतियों को लाभ पहुंचाता है, जबकि लाखों श्रमिकों को बेरोजगारी और दुख देता है। उन्होंने *हिंद स्वराज* में लिखा कि मशीनें मनुष्य को दास बनाती हैं और प्रकृति को नष्ट करती हैं।
- **मशीनरी का सीमित उपयोग**: गांधीजी पूर्ण रूप से मशीन-विरोधी नहीं थे, लेकिन उन्होंने कहा कि मशीनें केवल तभी स्वीकार्य हैं जब वे मनुष्य की सेवा करें, न कि उसे बेरोजगार बनाएं। उन्होंने कुटीर उद्योगों और ग्रामीण तकनीक को प्राथमिकता दी, जो आज के 'उपयुक्त तकनीक' (Appropriate Technology) के विचार से मेल खाती है।
- **स्वदेशी और स्थानीय अर्थव्यवस्था**: स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से गांधीजी ने स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपभोग और स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर जोर दिया। यह मॉडल आज की 'सर्कुलर इकोनॉमी' की नींव है, जिसमें अपशिष्ट को संसाधन बनाया जाता है और लंबी दूरी की आपूर्ति श्रृंखला को कम किया जाता है।
- **ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकृत विकास**: गांधीजी का ग्राम स्वराज सतत विकास का व्यावहारिक मॉडल था। प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भर इकाई बनाने का उनका सपना पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता पर आधारित था। यह आज के पंचायती राज और आत्मनिर्भर भारत अभियान में दिखाई देता है।
- **प्रकृति के प्रति अहिंसा**: गांधीजी की अहिंसा केवल मानव तक सीमित नहीं थी। उन्होंने प्रकृति को मां के समान माना और उसके शोषण को हिंसा बताया। "प्रकृति हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है, लालच की नहीं" — यह कथन सतत विकास की मूल भावना है।
- **सरल जीवन और संयम**: गांधीजी ने 'सरल जीवन, उच्च विचार' का आदर्श दिया। उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध उनका संयमपूर्ण जीवन आज के 'माइनिमलिज्म' और 'सस्टेनेबल लाइफस्टाइल' की प्रेरणा है।
- **सामाजिक न्याय और अंतिम व्यक्ति**: गांधीजी का 'अंत्योदय' का सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि विकास का लाभ सबसे अंतिम व्यक्ति तक पहुंचे। यह आज के सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स (SDGs) के लक्ष्यों — 'कोई भी पीछे न छूटे' — से पूरी तरह मेल खाता है।

गांधीवादी चिंतन विकास को मात्र आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि समग्र मानवीय, पर्यावरणीय और नैतिक प्रगति मानता है। यह मॉडल आज के जलवायु संकट, संसाधन संकट और सामाजिक असमानता के युग में न केवल प्रासंगिक है, बल्कि एकमात्र टिकाऊ विकल्प भी है।

ग्राम स्वराज : सतत विकास का आधार

गांधीजी का ग्राम स्वराज मॉडल विकेंद्रीकृत विकास का आदर्श है। उन्होंने ग्राम स्वराज को भारतीय स्वतंत्रता के बाद के राष्ट्र-निर्माण का आधार बनाया। उनके अनुसार प्रत्येक गांव को एक स्वावलंबी और आत्मनिर्भर इकाई के रूप में विकसित किया जाना चाहिए, जहां कृषि, कुटीर उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य और शासन व्यवस्था स्थानीय स्तर पर संचालित हों। यह मॉडल सतत विकास का मूल मंत्र है क्योंकि यह केंद्रीकृत शोषण को समाप्त कर पर्यावरणीय संतुलन, आर्थिक न्याय और सामाजिक सद्भाव को सुनिश्चित करता है।

गांधीजी का मानना था कि सच्चा स्वराज गांवों से शुरू होता है। उन्होंने कहा कि "भारत गांवों में बसा है" और यदि गांव मजबूत होंगे तभी राष्ट्र मजबूत होगा। ग्राम स्वराज में गांव की पंचायत को सर्वोच्च शक्ति प्रदान की गई है। यहां कृषि को मुख्य आधार बनाते हुए कुटीर उद्योगों जैसे चरखा, बुनाई, लोहार, बढ़ईगीरी आदि को प्रोत्साहन दिया जाता है। इससे स्थानीय संसाधनों का उपयोग होता है, बेरोजगारी कम होती है और पर्यावरण का शोषण नहीं होता। गांधीजी ने बड़े कारखानों और अंधाधुंध औद्योगीकरण का विरोध किया क्योंकि ये प्रकृति को नष्ट करते हैं और धन को कुछ हाथों में केंद्रित कर देते हैं।

यह मॉडल पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हुए आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित करता है। ग्राम स्वराज में अपशिष्ट पदार्थों का पुनः उपयोग, जैविक खेती, जल संरक्षण और वन संरक्षण जैसे तत्व स्वाभाविक रूप से शामिल हैं। गांधीजी ने पूरे भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने पर जोर दिया। उनका यह विचार आज भी प्रासंगिक है और आत्मनिर्भर भारत अभियान, मनरेगा, पंचायती राज व्यवस्था तथा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन जैसी योजनाओं की प्रेरणा स्रोत है।

समकालीन संदर्भ में ग्राम स्वराज सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) से सीधे जुड़ता है। यह "कोई पीछे न छूटे" के सिद्धांत को कार्यान्वित करता है। आज जब जलवायु परिवर्तन और शहरीकरण की चुनौतियां बढ़ रही हैं, गांधीजी का ग्राम स्वराज मॉडल हमें याद दिलाता है कि सच्चा विकास शहरी केंद्रों में नहीं, बल्कि आत्मनिर्भर गांवों में निहित है।

इस प्रकार गांधीजी का ग्राम स्वराज न केवल सतत विकास का आधार है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय का एक जीवंत और व्यावहारिक मॉडल भी है।

अहिंसा और पर्यावरण संरक्षण

गांधीजी की अहिंसा केवल मानव-मानव संबंध तक सीमित नहीं थी। यह प्रकृति के प्रति भी अहिंसा थी। उन्होंने पेड़ों की कटाई, जल स्रोतों के प्रदूषण और पशु शोषण का विरोध किया। आज के जलवायु संकट में उनका यह विचार "अहिंसात्मक पर्यावरणवाद" के रूप में उभर रहा है।

गांधीजी ने अहिंसा को जीवन की व्यापक दर्शन के रूप में देखा। उनके अनुसार प्रकृति के साथ हिंसा करना मनुष्य की नैतिक गिरावट है। उन्होंने बार-बार कहा कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक है। *हिंद स्वराज* और अन्य लेखों में उन्होंने औद्योगिक सभ्यता द्वारा प्रकृति के दोहन की निंदा की। गांधीजी चरखा, गोपालन और वन संरक्षण को अहिंसा के व्यावहारिक रूप मानते थे। उन्होंने पशु-बलि, शिकार और अनावश्यक वृक्ष कटाई का घोर विरोध किया। उनका प्रसिद्ध कथन "प्रकृति हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है, लेकिन लालच की नहीं" पर्यावरण संरक्षण की मूल भावना को स्पष्ट रूप से दर्शाता है।

गांधीजी का पर्यावरणीय अहिंसा का दर्शन आज अत्यंत प्रासंगिक है। वर्तमान जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, वन विनाश, नदियों का प्रदूषण और जैव विविधता के ह्रास के संकट में उनका विचार एक मजबूत नैतिक आधार प्रदान करता है। "अहिंसात्मक पर्यावरणवाद" की अवधारणा आज पर्यावरणविदों और विचारकों द्वारा व्यापक रूप से चर्चित है। वंदना शिवा जैसी पर्यावरणविद् गांधीजी के विचारों को जैविक कृषि, बीज स्वराज और पर्यावरण न्याय से जोड़ती हैं।

समकालीन भारत में स्वच्छ भारत अभियान, नमामी गंगे, राष्ट्रीय सौर ऊर्जा मिशन और वन महोत्सव जैसे कार्यक्रम गांधीजी की अहिंसात्मक पर्यावरण दृष्टि से प्रेरित हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में जलवायु कार्रवाई (SDG-13) और जिम्मेदार उपभोग (SDG-12) गांधीवादी मूल्यों से गहराई से जुड़े हैं।

गांधीजी हमें सिखाते हैं कि सच्चा विकास वह है जो प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाए, न कि उसके विरुद्ध चले। उनकी अहिंसा का विस्तारित रूप आज के युग में पर्यावरण संरक्षण, सतत जीवन शैली और भावी पीढ़ियों के प्रति नैतिक दायित्व का प्रतीक बन गया है।

इस प्रकार, गांधीजी की अहिंसा न केवल राजनीतिक और सामाजिक संघर्ष का हथियार थी, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की एक शक्तिशाली वैचारिक नींव भी है।

स्वदेशी और आर्थिक न्याय

गांधीजी ने कहा था कि विकास तब तक सार्थक नहीं जब तक अंतिम व्यक्ति को लाभ न पहुंचे। यह विचार आज के सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स के लक्ष्य "No Poverty" और "Reduced Inequalities" से सीधे जुड़ता है।

स्वदेशी आंदोलन गांधीजी के आर्थिक दर्शन का मूल स्तंभ था। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद और औद्योगिक पूंजीवाद दोनों के विरुद्ध स्वदेशी को एक शक्तिशाली हथियार बनाया। स्वदेशी का अर्थ केवल विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं था, बल्कि स्वावलंबन, स्थानीय उत्पादन और आर्थिक आत्मनिर्भरता पर आधारित एक समग्र दृष्टिकोण था। गांधीजी का मानना था कि भारत की अर्थव्यवस्था को विदेशी निर्भरता से मुक्त करके ही सच्चा आर्थिक न्याय स्थापित किया जा सकता है।

उन्होंने कुटीर उद्योगों, विशेष रूप से चरखा को प्रतीक बनाया क्योंकि इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन होता था और धन गांवों में ही रहता था। गांधीजी ने बड़े पैमाने के औद्योगीकरण का विरोध किया क्योंकि यह धन को कुछ पूंजीपतियों के हाथों में केंद्रित कर देता है और लाखों कारीगरों को बेरोजगार बना देता है। उनका "अंत्योदय" का सिद्धांत विकास की प्रक्रिया में सबसे गरीब और अंतिम व्यक्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता देने पर बल देता है।

स्वदेशी और आर्थिक न्याय का गांधीवादी मॉडल आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। यह सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स (SDGs) के लक्ष्य 1 (No Poverty) और लक्ष्य 10 (Reduced Inequalities) की मूल भावना से पूरी तरह मेल खाता है। वर्तमान भारत में 'आत्मनिर्भर भारत अभियान', 'वोकल फॉर लोकल', 'मेक इन इंडिया' और स्थानीय उत्पादों को बढ़ावा देने वाली नीतियां गांधीजी के स्वदेशी विचार से सीधे प्रेरित हैं।

गांधीजी आर्थिक विकास को नैतिकता से अलग नहीं मानते थे। उनके अनुसार आर्थिक प्रगति तभी सार्थक है जब वह सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय गरिमा के साथ हो। उन्होंने कहा था कि "अर्थशास्त्र नैतिकता के बिना पंगु है।"

समकालीन संदर्भ में स्वदेशी का विचार उपभोक्तावादी संस्कृति, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण और बढ़ती असमानता के विरुद्ध एक मजबूत विकल्प प्रस्तुत करता है। यह हमें सिखाता है कि सतत विकास का मार्ग केंद्रीकृत और शोषणकारी अर्थव्यवस्था में नहीं, बल्कि विकेंद्रीकृत, न्यायपूर्ण और स्वावलंबी आर्थिक व्यवस्था में निहित है।

इस प्रकार, गांधीजी का स्वदेशी दर्शन न केवल औपनिवेशिक काल का आर्थिक हथियार था, बल्कि आज के वैश्विक आर्थिक असमानता और पर्यावरणीय संकट के युग में सतत और न्यायपूर्ण विकास का एक अमर मार्गदर्शक है।

समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

आज जब संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (SDGs) 2030 एजेंडा लागू हो रहा है, गांधीजी के विचार नीति-निर्माताओं के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। भारत में आत्मनिर्भर भारत अभियान, स्वच्छ भारत मिशन, नमामी गंगे, राष्ट्रीय सौर मिशन और जैविक खेती जैसे कार्यक्रम गांधीवादी चिंतन से प्रेरित हैं। डिजिटल युग में भी गांधीजी का संदेश प्रासंगिक है—उपभोक्तावाद के स्थान पर संयम, वैश्वीकरण के स्थान पर आत्मनिर्भरता और तकनीकी विकास के स्थान पर मानवीय मूल्यों का समावेश।

- **सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) से संबंध**: संयुक्त राष्ट्र के 17 सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स में गरीबी उन्मूलन, भूख मुक्ति, जलवायु कार्रवाई, जिम्मेदार उपभोग और असमानता में कमी जैसे लक्ष्य गांधीजी के 'अंत्योदय', अहिंसा और स्वदेशी के सिद्धांतों से सीधे प्रेरित हैं। गांधी का दर्शन SDGs को नैतिक और व्यावहारिक आधार प्रदान करता है।
- **आत्मनिर्भर भारत अभियान**: प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा शुरू किया गया आत्मनिर्भर भारत अभियान गांधीजी के स्वदेशी और ग्राम स्वराज के विचार का आधुनिक रूप है। यह स्थानीय उत्पादन, स्वावलंबन और 'वोकल फॉर लोकल' पर जोर देता है।
- **स्वच्छ भारत मिशन और नमामी गंगे**: स्वच्छता और नदी संरक्षण के ये कार्यक्रम गांधीजी की पर्यावरणीय अहिंसा और सरल जीवन के आदर्श से प्रेरित हैं। गांधीजी ने हमेशा स्वच्छता को ईश्वर की सेवा माना था।
- **राष्ट्रीय सौर मिशन और नवीकरणीय ऊर्जा**: सौर ऊर्जा और नवीकरणीय स्रोतों पर जोर गांधीजी के प्रकृति संरक्षण और संसाधनों के संयमपूर्ण उपयोग के विचार को दर्शाता है।

- **जैविक खेती और पर्यावरण संरक्षण**: जैविक कृषि को बढ़ावा गांधीजी की गोपालन, जैविक खाद और प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन शैली की याद दिलाता है।
- **डिजिटल युग में प्रासंगिकता**: आज के डिजिटल और वैश्वीकरण के दौर में गांधीजी का संदेश अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे उपभोक्तावाद के स्थान पर संयम, अंधाधुंध वैश्वीकरण के स्थान पर आत्मनिर्भरता और शुद्ध तकनीकी प्रगति के स्थान पर मानवीय मूल्यों, नैतिकता तथा सामाजिक न्याय पर बल देते हैं।
- **नई पीढ़ी के लिए संदेश**: सोशल मीडिया और उपभोक्तावादी संस्कृति से प्रभावित युवाओं के लिए गांधीजी का दर्शन जिम्मेदार नागरिकता, पर्यावरण संरक्षण और नैतिक जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है।

गांधीवादी विचार आज मात्र ऐतिहासिक नहीं, बल्कि वैश्विक पर्यावरणीय और सामाजिक संकट के समाधान के लिए एक जीवंत और व्यावहारिक दर्शन हैं।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी के विचार सतत विकास की अवधारणा को एक ठोस नैतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय आधार प्रदान करते हैं। उनका दर्शन हमें स्पष्ट रूप से सिखाता है कि विकास की राह केवल आर्थिक वृद्धि की नहीं, बल्कि प्रकृति के संरक्षण, सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के संतुलन की होनी चाहिए। ग्राम स्वराज, स्वदेशी, अहिंसा, अंत्योदय और सरल जीवन जैसे उनके मूल सिद्धांत आज भी पूरे भारत के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

गांधीजी ने औद्योगिक पूंजीवाद की अंधी दौड़ और उपभोक्तावादी संस्कृति की निंदा करते हुए एक ऐसे विकास मॉडल की कल्पना की थी जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करे बिना भविष्य की पीढ़ियों के संसाधनों को नष्ट न करे। उनका प्रसिद्ध कथन "प्रकृति हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है, लालच की नहीं" आज के जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण और संसाधन संकट के युग में अत्यंत प्रासंगिक है। गांधीवादी चिंतन सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स (SDGs) को मात्र सरकारी लक्ष्यों से ऊपर उठाकर एक नैतिक दायित्व बनाता है।

समकालीन भारत में आत्मनिर्भर भारत अभियान, स्वच्छ भारत मिशन, नमामी गंगे, जैविक खेती और नवीकरणीय ऊर्जा कार्यक्रम गांधीजी के विचारों का प्रत्यक्ष अनुप्रयोग हैं। इनके माध्यम से देश ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत कर रहा है और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने का प्रयास कर रहा है। डिजिटल युग और वैश्वीकरण के दौर में भी गांधीजी का संदेश उपभोक्तावाद के विरुद्ध संयम, अंधाधुंध विकास के विरुद्ध आत्मनिर्भरता और तकनीकी प्रगति के साथ नैतिक मूल्यों के समावेश का आह्वान करता है।

गांधीजी का सतत विकास का दर्शन केवल भारत तक सीमित नहीं है। यह सम्पूर्ण विश्व के लिए एक सार्वभौमिक मार्गदर्शक है। आज जब पूरी मानवता पर्यावरणीय संकट, आर्थिक असमानता और नैतिक संकट से जूझ रही है, तब उनका चिंतन हमें याद दिलाता है कि सच्ची प्रगति मनुष्य को प्रकृति का शोषक नहीं, बल्कि उसका संरक्षक बनाती है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि गांधीजी के विचारों को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों, नीति निर्माण, शोध कार्यों और जन-जीवन में सक्रिय रूप से शामिल किया जाए। नई पीढ़ी को इन आदर्शों से जोड़कर हम एक ऐसे भारत का निर्माण कर सकते हैं जो पर्यावरणीय रूप से संतुलित, आर्थिक रूप से न्यायपूर्ण और नैतिक रूप से प्रबुद्ध हो।

गांधीजी का सतत विकास का सपना तभी साकार होगा जब हम उनके दिखाए मार्ग पर चलते हुए व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर संयम, स्वावलंबन और अहिंसा को अपनाएंगे। उनका दर्शन न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के भारत तथा विश्व के लिए एक जीवंत प्रकाशस्तंभ है।

संदर्भ सूची

- चंद्र, बिपन. (2009). *आधुनिक भारत का इतिहास*. ओरिएंट ब्लैकस्वान. (पृ. 142–178)
- गुहा, रामचंद्र. (2018). *गांधी: द इयर्स दैट चेंज्ड द वर्ल्ड*. पेंगुइन रैंडम हाउस. (पृ. 289–345)
- दासगुप्ता, अजित. (1996). *गांधी इकोनॉमिक्स*. ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. (पृ. 67–112)
- शिवा, वंदना. (2005). *अर्थ डेमोक्रेसी*. साउथ एंड प्रेस. (पृ. 45–89)
- सरीन, माधव. (2012). *सस्टेनेबल डेवलपमेंट एंड गांधी*. टेरी प्रेस. (पृ. 134–167)
- गांधी, मोहनदास करमचंद. (1945). *हिंद स्वराज*. नवजीवन प्रकाशन. (पृ. 56–78)
- गांधी, मोहनदास करमचंद. (1962). *सर्वोदय*. नवजीवन प्रकाशन. (पृ. 112–145)
- कुमार, रवींद्र. (2008). *गांधी और पर्यावरण*. राधा पब्लिकेशंस. (पृ. 78–105)

- पटेल, सुरेंद्र. (1995). *गांधी इकोनॉमिक थॉट*. अनामिका पब्लिशर्स. (पृ. 89–124)
- झा, सीताराम. (2012). *भारत के स्वतंत्रता सेनानी*. बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी. (पृ. 52–89)
- नौरोजी, दादाभाई. (1996). *भारत में गरीबी और अन-ब्रिटिश शासन*. प्रकाशन विभाग. (पृ. 84–116)
- शर्मा, रामविलास. (2007). *भारत में अंग्रेजी राज और जनआंदोलन*. राजकमल प्रकाशन. (पृ. 201–236)
- अग्रवाल, जे.सी. (2008). *आधुनिक भारत*. एस. चंद प्रकाशन. (पृ. 168–205)
- यादव, रामनाथ. (2014). *औपनिवेशिक भारत और जनप्रतिरोध*. बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी. (पृ. 74–110)
- तिवारी, आर.के. (2013). *आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास*. लोकभारती प्रकाशन. (पृ. 156–189)
- पांडे, गोविंद चंद्र. (2002). *भारतीय संस्कृति का विकास*. चौखंबा प्रकाशन. (पृ. 133–164)
- मिश्र, विद्यानिवास. (2006). *भारतीय समाज और संस्कृति*. राजकमल प्रकाशन. (पृ. 182–214)
- वर्मा, ओमप्रकाश. (2010). *भारतीय जनजातियों का इतिहास*. रावत प्रकाशन. (पृ. 118–149)
- महतो, बी.पी. (2015). *जनजातीय चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन*. प्रभात प्रकाशन. (पृ. 63–98)
- सिन्हा, नामवर. (2008). *इतिहास और आलोचना*. राजकमल प्रकाशन. (पृ. 126–158)
- भारती, धर्मवीर. (2001). *भारतीय समाज और जनआंदोलन*. भारतीय ज्ञानपीठ. (पृ. 91–124)
- शुक्ल, रामचंद्र. (2005). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. लोकभारती प्रकाशन. (पृ. 298–332)
- प्रसाद, ईश्वरी. (2004). *आधुनिक भारत का इतिहास*. इंडियन प्रेस. (पृ. 210–248)
- सिन्हा, बी.एन. (2009). *भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और बिहार*. जानकी प्रकाशन. (पृ. 174–209)
- ठाकुर, केदारनाथ. (2011). *बिहार का स्वतंत्रता संग्राम*. अनुपम प्रकाशन. (पृ. 118–152)
- राय, रामेश्वर. (2013). *भारत छोड़ो आंदोलन और बिहार*. वाणी प्रकाशन. (पृ. 94–137)
- झा, नंदकिशोर. (2010). *ग्रामीण भारत और राष्ट्रीय चेतना*. साहित्य भवन. (पृ. 166–198)
- चौधरी, राधाकृष्ण. (2007). *बिहार का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास*. बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी. (पृ. 221–259)
- गांधी, मोहनदास करमचंद. (1958). *माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ*. नवजीवन प्रकाशन. (पृ. 312–356)
- कुमार, संजीव. (2020). *गांधीवादी दर्शन और सतत विकास*. किताब महल. (पृ. 145–189)
- सिंह, कुमार सुरेश. (2003). *भारत में जनजातीय आंदोलन*. मनोहर प्रकाशन. (पृ. 144–176)
- हबीब, इरफान. (2011). *भारतीय आर्थिक इतिहास*. तुलिका बुक्स. (पृ. 188–224)
- दत्ता, के.के. (2005). *बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास*. बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी. (पृ. 96–132)
- सरकार, सुमित. (2010). *मॉडर्न इंडिया: 1885–1947*. मैकमिलन प्रकाशन. (पृ. 201–245)

◂◂ ▸▸

गया जी जिला के बेरोजगार युवाओं की सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव का अध्ययन

पूजा कुमारी*

सारांश (Abstract)

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य बिहार के गया जिले के बेरोजगार युवाओं पर बेरोजगारी के सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक प्रभावों का विश्लेषण करना है। बेरोजगारी आज भारत के समक्ष एक गंभीर सामाजिक-आर्थिक चुनौती के रूप में उभर रही है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव युवाओं के जीवन, आत्मविश्वास, मानसिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक सहभागिता पर पड़ रहा है। अध्ययन में गया जिले के विभिन्न प्रखण्डों से 300 शिक्षित बेरोजगार युवक एवं युवतियों को चयनित किया गया। शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आंकड़ों का उपयोग किया गया है। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्यों में बेरोजगारी के सामाजिक प्रभावों, आर्थिक प्रभावों तथा युवाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के साथ इसके संबंध का अध्ययन शामिल है। यह अध्ययन दर्शाता है कि बेरोजगारी केवल आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि इसका व्यापक प्रभाव युवाओं के सामाजिक एवं मानसिक जीवन पर भी पड़ता है। अतः कौशल विकास, रोजगारोन्मुख शिक्षा, स्वरोजगार के अवसर तथा मानसिक स्वास्थ्य परामर्श सेवाओं को बढ़ावा देकर इस समस्या के प्रभावों को कम किया जा सकता है। यह अध्ययन नीति-निर्माताओं, शिक्षाविदों एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

मुख्य शब्द (Keywords): बेरोजगारी, युवा, सामाजिक प्रभाव, आर्थिक प्रभाव, मानसिक स्वास्थ्य, गया जिला, शिक्षित बेरोजगार युवा।

परिचय-: वर्तमान समय में शिक्षित बेरोजगारी भारतीय समाज की एक गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी जब युवाओं को अपेक्षित रोजगार नहीं मिलता, तो यह स्थिति उनके आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और मानसिक संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। शिक्षित बेरोजगार युवाओं में बदलते मानसिक समस्याएं केवल व्यक्तिगत संकट नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक संरचना से जुड़े हुआ प्रश्न हैं।

शिक्षित बेरोजगार युवाओं में मानसिक स्थिति के लक्षणों में अवसाद, चिंता, आत्महीनता, सामाजिक अलगाव, चिड़चिड़ापन तथा आत्महत्या प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं। शर्मा, एस. के. (2023) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य केवल व्यक्तिगत विषय नहीं, बल्कि सामाजिक उन्नयन और अवसरों की प्राप्ति से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। जब समाज में योग्यता के अनुरूप अवसर उपलब्ध नहीं होते, तो व्यक्ति की मानसिक स्थिति अस्थिर होने लगती है।

इसके अतिरिक्त प्रशासनिक एवं नीतिगत परिस्थितियों की सीमाएँ भी इस समस्या के जिम्मेदार हैं। सिंह, एच. (1970) ने लोक प्रशासन की भूमिका को निर्देशांक करते हुए कहा है कि प्रभावी प्रशासनिक तंत्र ही सामाजिक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यदि रोजगार सृजन की नीतियाँ प्रभावी ढंग से लागू न हों, तो युवाओं में असंतोष और मानसिक स्थिरता बढ़ती है।

देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में जारी वर्तमान शिक्षा पद्धति पर लम्बे समय से सवालिया निशान लगाये जाते रहे हैं। हाल ही में वर्ड बैंक के एक सर्वे से भी यह निष्कर्ष निकला है कि हमारे 90 प्रतिशत स्नातक नौकरी के काबिल ही नहीं हैं। भारत युवाओं का देश है । आँकड़े बताते हैं कि भारत में दुनिया के सबसे ज्यादा युवा मौजुद है यहाँ तक कि चीन भी हमसे पीछे है । यू एन डी पी के मुताबिक दुनिया

* शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय 'बोधगया'

में लगभग 121 करोड़ युवा हैं जिसमें लगभग 21 प्रतिशत भारतीय हैं । यदि सम्पूर्ण विश्व की बात करें तो दुनिया की लगभग 779 करोड़ आबादी में 16 प्रतिशत युवाओं की जनसंख्या है । लगभग 57 प्रतिशत युवा विश्व के केवल दस देशों में ही रहते हैं जिसमें भारत सवौपरि है ।

किसी देश की इतनी बड़ी आबादी का एक बड़ा हिस्सा यदि बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहा है तो निश्चित तौर पर समस्या बड़ी है। इससे देश की युवा पीढ़ी के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पडना स्वभाविक है। वैसे युवाओं के तनाव के कई और कारण भी है लेकिन मौजुदा समय में सबसे ज्यादा तनाव बेरोजगारी की समस्या से हो रहा है जिस पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है युवाओं द्वारा प्रति वर्ष यूपीएससी, एमपीएससी, बीपीएससी आदि कई अन्य भर्ती, परीक्षाओं के लिए आवेदन किए जाते हैं । पुलिस भर्ती और सुपर टेट (अध्यापक भर्ती परीक्षा) में तो यह संख्या अक्सर कई रिकॉर्ड तोड़ती है ।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)-:

बेरोजगारी युवाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक जीवन को गहराई से प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण समस्या है। इस विषय पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक शोध किए गए हैं।

Banks and Jackson (1982) ने अपने अध्ययन में पाया कि बेरोजगारी और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के बीच घनिष्ठ संबंध है। बेरोजगार युवाओं में तनाव, चिंता तथा मनोवैज्ञानिक विकारों की संभावना रोजगार प्राप्त युवाओं की तुलना में अधिक पाई गई।

राम आहूजा (2002) ने भारतीय संदर्भ में शिक्षित बेरोजगार युवाओं की समस्याओं का अध्ययन करते हुए पाया कि बेरोजगारी युवाओं में निराशा, कुंठा तथा आत्मविश्वास की कमी उत्पन्न करती है। उन्होंने इसे सामाजिक असंतोष का प्रमुख कारण माना।

प्रणव पाण्ड्या (2006) ने भारत में बढ़ती जनसंख्या और सीमित रोजगार अवसरों के कारण उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या का विश्लेषण किया। अध्ययन में पाया गया कि रोजगार की मांग और उपलब्ध अवसरों के बीच बड़ा अंतर युवाओं में असुरक्षा और तनाव को बढ़ाता है।

Les Cahil (2008) के अनुसार दीर्घकालीन बेरोजगारी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य, आत्मसम्मान और कार्यक्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। बेरोजगार व्यक्ति में नकारात्मक सोच और सामाजिक अलगाव की प्रवृत्ति विकसित हो सकती है।

Henderson et al. (2017) ने उन युवाओं का अध्ययन किया जो शिक्षा, रोजगार या प्रशिक्षण (NEET) से बाहर थे। अध्ययन में पाया गया कि ऐसे युवाओं में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ, नशा सेवन तथा सामाजिक बहिष्करण का जोखिम अधिक होता है।

Rodwell et al. (2018) ने ऑस्ट्रेलिया में किए गए एक अनुदैर्ध्य अध्ययन में पाया कि किशोरावस्था की मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ भविष्य में बेरोजगारी और सामाजिक-आर्थिक हाशियाकरण का कारण बन सकती हैं। अध्ययन ने रोजगार और मानसिक स्वास्थ्य के बीच द्विपक्षीय संबंध को रेखांकित किया।

McGorry et al. (2025) ने युवाओं में बढ़ती मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का विश्लेषण करते हुए बताया कि बेरोजगारी, आर्थिक असुरक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहे हैं। उन्होंने रोकथाम, कौशल विकास और प्रारंभिक हस्तक्षेप की आवश्यकता पर बल दिया।

Paul and Moser (2009) के शोध से स्पष्ट हुआ कि बेरोजगार व्यक्तियों में अवसाद और मानसिक तनाव का स्तर रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की तुलना में अधिक होता है। अध्ययन ने बेरोजगारी को मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक प्रमुख जोखिम कारक माना।

Bluestein (2019) ने बताया कि बेरोजगारी केवल आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की सामाजिक पहचान, आत्मसम्मान और जीवन संतुष्टि को भी प्रभावित करती है। युवाओं में बेरोजगारी सामाजिक अलगाव और पारिवारिक तनाव को बढ़ाती है।

शोध पद्धति-:

अध्ययन का क्षेत्र-: बिहार राज्य के गया जिले को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयनित किया गया है। गया जिला राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित एक महत्वपूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक क्षेत्र है। यह क्षेत्र शहरी एवं ग्रामीण दोनों प्रकार की संरचना का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे शिक्षित बेरोजगार युवाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए यह उपयुक्त माना गया है। अध्ययन के अंतर्गत गया जिले के विभिन्न प्रखण्डों से कुल 300 शिक्षित बेरोजगार युवक एवं युवतियों का चयन किया गया है, जिनकी शैक्षणिक योग्यता इंटरमीडिएट, स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की है।

उद्देश्य (Objectives)-:

1. बेरोजगारी के सामाजिक प्रभावों (जैसे सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक संबंध, सामाजिक सहभागिता आदि) का अध्ययन करना।
2. बेरोजगारी के आर्थिक प्रभावों (जैसे आय, जीवन-स्तर, आर्थिक निर्भरता आदि) का अध्ययन करना।
3. बेरोजगारी और युवाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के मध्य संबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ (Hypotheses)-:

H_1: गया जिला के युवाओं में बेरोजगारी का सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

H_2: बेरोजगारी युवाओं की आर्थिक स्थिति को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

युवा बेरोजगारी का आर्थिक ,सामाजिक , प्रभाव का विश्लेषण-:

आर्थिक प्रभाव का विश्लेषण -: बेरोज़गारी का प्रभाव केवल व्यक्ति की आय या रोजगार की स्थिति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि इसका व्यापक असर समाज और अर्थव्यवस्था दोनों पर पड़ता है। जब बड़ी संख्या में युवा बेरोज़गार होते हैं, तो इससे समाज में आर्थिक असमानता, असुरक्षा और असंतोष की भावना बढ़ने लगती है। रोजगार व्यक्ति को न केवल आर्थिक स्थिरता प्रदान करता है, बल्कि उसे सामाजिक पहचान और सम्मान भी देता है। इसलिए जब युवा रोजगार से वंचित रहते हैं, तो यह स्थिति उनके सामाजिक जीवन और आत्मसम्मान को भी प्रभावित करती है (मर्फी और अथाना सौ, 1999)।

बेरोज़गारी का सामाजिक प्रभाव समाज की संरचना और सामाजिक संबंधों में भी दिखाई देता है। बेरोज़गार युवाओं में अक्सर निराशा, असंतोष और सामाजिक अलगाव की भावना उत्पन्न हो सकती है। कई बार यह स्थिति उन्हें समाज की मुख्यधारा से दूर कर देती है और वे सामाजिक गतिविधियों में कम भाग लेने लगते हैं। कुछ शोधों में यह पाया गया है कि युवाओं में बढ़ती बेरोज़गारी सामाजिक अस्थिरता और असमानता को भी बढ़ावा दे सकती है, क्योंकि रोजगार की कमी के कारण समाज में अवसरों का असमान वितरण दिखाई देता है (सोलोमोस, 1985)।

इसके अतिरिक्त बेरोज़गारी का प्रभाव युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक व्यवहार पर भी पड़ता है। जब युवा लंबे समय तक बेरोज़गार रहते हैं, तो उनमें तनाव, चिंता और आत्मविश्वास की कमी जैसी समस्याएँ विकसित हो सकती हैं। कई अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि बेरोज़गारी के कारण युवाओं की मनोवैज्ञानिक स्थिति प्रभावित होती है, जिससे उनकी जीवन संतुष्टि और मानसिक संतुलन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है (वानी और अहमद, 2024)।

आर्थिक दृष्टि से भी बेरोज़गारी का प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। जब बड़ी संख्या में युवा बेरोज़गार होते हैं, तो इससे देश की उत्पादक क्षमता और आर्थिक विकास प्रभावित होता है। युवा वर्ग किसी भी

राष्ट्र की कार्यशील शक्ति का प्रमुख हिस्सा होता है, इसलिए उनकी ऊर्जा और क्षमता का सही उपयोग न होना आर्थिक प्रगति के लिए बाधा बन सकता है। इसके अतिरिक्त बेरोज़गारी के कारण परिवारों की आय में कमी आती है, जिससे उनके जीवन स्तर और सामाजिक सुरक्षा पर भी प्रभाव पड़ता है (मालगास, 2022)[14]।

बेरोज़गारी का प्रभाव सामाजिक कार्य और सामुदायिक विकास के क्षेत्र में भी देखा जाता है। कई शोधों में यह बताया गया है कि युवाओं में बेरोज़गारी सामाजिक सेवाओं और नीतियों की आवश्यकता को बढ़ा देती है। सामाजिक कार्यकर्ताओं को ऐसे युवाओं के साथ कार्य करना पड़ता है जो आर्थिक, मानसिक और सामाजिक समस्याओं से जूझ रहे होते हैं। इस प्रकार बेरोज़गारी केवल आर्थिक समस्या नहीं रहती, बल्कि यह सामाजिक कल्याण और सामुदायिक विकास से भी गहराई से जुड़ जाती है (लियांग, एनजी, त्सुई, यान और लैम, 2017)।

इसके अलावा बेरोज़गारी का अनुभव युवाओं के व्यक्तिगत जीवन और मानसिक स्थिति पर भी गहरा प्रभाव डालता है। कई बेरोज़गार युवाओं के अनुभव बताते हैं कि रोजगार की कमी उन्हें असुरक्षित और असहाय महसूस करा सकती है। जापान में किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया कि बेरोज़गार युवाओं के व्यक्तिगत अनुभवों में मानसिक तनाव, सामाजिक दबाव और भविष्य को लेकर चिंता प्रमुख रूप से दिखाई देती है। यह दर्शाता है कि बेरोज़गारी केवल आर्थिक कठिनाई नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के भावनात्मक और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करती है (किटो और यूएनो, 2016)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बेरोज़गारी का प्रभाव बहुआयामी है, जो सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्तर पर युवाओं और समाज दोनों को प्रभावित करता है। इसलिए इस समस्या को केवल रोजगार उपलब्ध कराने तक सीमित न रखते हुए इसके सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को भी समझना आवश्यक है, ताकि प्रभावी नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से युवाओं को सशक्त बनाया जा सके और समाज में स्थिरता तथा विकास को सुनिश्चित किया जा सके।

बेरोजगार युवाओं की वर्तमान सामाजिक स्थिति-:

आत्मविश्वास में कमी-: बेरोज़गारी का सबसे प्रमुख प्रभाव युवाओं के आत्मविश्वास पर पड़ता है। जब युवा अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद भी उपयुक्त रोजगार प्राप्त नहीं कर पाते, तो उनके मन में स्वयं की क्षमताओं को लेकर संदेह उत्पन्न होने लगता है। रोजगार व्यक्ति को केवल आर्थिक सुरक्षा ही नहीं देता, बल्कि वह उसे सामाजिक पहचान, सम्मान और आत्मविश्वास भी प्रदान करता है। इसलिए जब युवाओं को लंबे समय तक रोजगार नहीं मिलता, तो वे स्वयं को असफल महसूस करने लगते हैं और उनका आत्मविश्वास धीरे-धीरे कम होने लगता है। यह स्थिति उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करती है (डिपेला, 2025)।

निराशा और हताशा की भावना-: बेरोज़गारी की स्थिति में युवाओं के मन में निराशा और हताशा की भावना उत्पन्न होना एक सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है। जब युवा लंबे समय तक रोजगार की तलाश करते हैं और उन्हें सफलता नहीं मिलती, तो वे अपने प्रयासों को व्यर्थ समझने लगते हैं। इस स्थिति में उनके मन में भविष्य को लेकर अनिश्चितता और असुरक्षा की भावना बढ़ने लगती है। धीरे-धीरे यह भावना उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को भी नकारात्मक बना सकती है। कई अध्ययनों में यह पाया गया है कि बेरोज़गारी के कारण युवाओं में निराशा और हताशा का स्तर बढ़ जाता है, क्योंकि वे अपने जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में स्वयं को असमर्थ महसूस करते हैं (मटेमेरी और न्हामो, 2019)[21]।

मानसिक तनाव और चिंता-: बेरोज़गारी युवाओं में मानसिक तनाव और चिंता को बढ़ाने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। जब युवा लंबे समय तक रोजगार प्राप्त नहीं कर पाते, तो वे अपने भविष्य, आर्थिक स्थिति और सामाजिक पहचान को लेकर चिंतित रहने लगते हैं। यह चिंता धीरे-धीरे मानसिक तनाव का रूप ले सकती है, जिससे उनके दैनिक जीवन और निर्णय लेने की क्षमता पर भी प्रभाव पड़ता है। बेरोज़गारी के कारण उत्पन्न यह

तनाव कई बार युवाओं के मानसिक संतुलन को प्रभावित करता है और वे स्वयं को अस्थिर महसूस करने लगते हैं (ह्यूबेक, टॉश और मेयर, 1995)[23]।

अवसाद और अकेलापन-: लंबे समय तक बेरोज़गार रहने की स्थिति युवाओं में अवसाद और अकेलेपन की भावना को भी जन्म दे सकती है। जब व्यक्ति को समाज में अपनी भूमिका और पहचान स्पष्ट नहीं होती, तो वह स्वयं को असुरक्षित और असहाय महसूस कर सकता है। बेरोज़गारी के कारण युवाओं में सामाजिक अलगाव की भावना उत्पन्न हो सकती है, जिससे वे दूसरों से संवाद कम कर देते हैं और अकेलेपन का अनुभव करने लगते हैं। कई शोधों में यह पाया गया है कि बेरोज़गारी और अवसाद के बीच गहरा संबंध होता है, क्योंकि रोजगार व्यक्ति को उद्देश्य, पहचान और सामाजिक जुड़ाव प्रदान करता है (ह्यूबेक, टॉश और मेयर, 1995)।

सामाजिक गतिविधियों से दूरी-: बेरोज़गारी के कारण युवाओं में सामाजिक गतिविधियों से दूरी बनाने की प्रवृत्ति भी देखी जाती है। जब युवा लंबे समय तक रोजगार प्राप्त नहीं कर पाते, तो वे समाज में स्वयं को असहज महसूस करने लगते हैं। कई बार वे सामाजिक कार्यक्रमों, मित्रों के साथ मिलने-जुलने या सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेने से बचते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि समाज उन्हें असफल या कमज़ोर समझेगा। इस प्रकार बेरोज़गारी सामाजिक अलगाव की स्थिति को जन्म दे सकती है (मटेमेरी और न्हामो, 2019)।

बेरोजगार युवाओं की प्रमुख समस्याएँ-:

(i)आर्थिक समस्याएँ-: बेरोजगार युवाओं के सामने सबसे प्रमुख समस्या आर्थिक अस्थिरता की होती है। रोजगार के अभाव में युवाओं के पास आय का कोई स्थायी स्रोत नहीं होता, जिससे वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस स्थिति में वे अपने परिवार पर निर्भर हो जाते हैं, जो उनके आत्मसम्मान को प्रभावित करता है और मानसिक दबाव को बढ़ाता है। आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण युवा अपने कौशल विकास, उच्च शिक्षा या अन्य अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते, जिससे उनकी बेरोजगारी की समस्या और गहराती जाती है।

(2) पारिवारिक दबाव और अपेक्षाएँ-: भारतीय समाज में परिवार का युवाओं के जीवन पर गहरा प्रभाव होता है। बेरोजगारी की स्थिति में परिवार की अपेक्षाएँ और दबाव युवाओं के लिए मानसिक तनाव का कारण बनते हैं। माता-पिता और अन्य परिजन अक्सर युवाओं से शीघ्र नौकरी प्राप्त करने की अपेक्षा रखते हैं। जब युवा इन अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाते, तो वे आत्मग्लानि, अपराधबोध और निराशा का अनुभव करते हैं।

(3) सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी-: समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा का एक प्रमुख आधार उसका रोजगार होता है। बेरोजगार युवाओं को समाज में अपेक्षित सम्मान नहीं मिल पाता, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति कमजोर हो जाती है। उन्हें आलोचना, उपेक्षा और कभी-कभी तिरस्कार का सामना करना पड़ता है, जिससे उनके आत्मसम्मान में गिरावट आती है।

(4) भविष्य के प्रति असुरक्षा-: बेरोजगार युवाओं में भविष्य को लेकर अनिश्चितता और असुरक्षा की भावना बहुत अधिक होती है। रोजगार के अभाव में वे अपने करियर, आर्थिक स्थिरता और जीवन के लक्ष्यों को लेकर चिंतित रहते हैं। यह अनिश्चितता उनके मानसिक संतुलन को प्रभावित करती है और उनमें तनाव तथा चिंता की स्थिति उत्पन्न करती है।

(5) कौशल और रोजगार के अवसरों में असमानता-: वर्तमान समय में बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण कौशल और रोजगार के अवसरों के बीच असंतुलन है। कई युवा शिक्षित होने के बावजूद आवश्यक तकनीकी और व्यावसायिक कौशल से वंचित रहते हैं, जिसके कारण उन्हें उपयुक्त रोजगार प्राप्त नहीं हो पाता। यह स्थिति कौशल अंतर (Skill Gap) के रूप में जानी जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गया जिले के शिक्षित युवाओं में बेरोजगारी एक गंभीर सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्या है। बेरोजगारी के कारण युवाओं में तनाव, चिंता, निराशा, अवसाद, आत्मविश्वास की कमी तथा सामाजिक अलगाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। रोजगार के अभाव से उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होती है और भविष्य के प्रति असुरक्षा की भावना बढ़ती है। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि शिक्षा एवं रोजगार के बीच असंगति, कौशल की कमी तथा सीमित रोजगार अवसर बेरोजगारी के प्रमुख कारण हैं। इसलिए कौशल विकास, स्वरोजगार, रोजगारोन्मुख शिक्षा तथा मनोवैज्ञानिक परामर्श सेवाओं को बढ़ावा देना आवश्यक है।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि युवा बेरोजगारी केवल आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि यह एक बहुआयामी सामाजिक चुनौती है, जिसके समाधान हेतु समग्र एवं दीर्घकालिक नीति-निर्माण की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ-:

1. कुमार, के. (2006). राज समाज और शिक्षा. राजकमल प्रकाशन. pp. 40-180.
2. कुमार, एस. (2018). बदलते गाँव, बदलते देहात: नई सामाजिकता का उदय. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. pp. 25-210.
3. शर्मा, एस. के. (2023). मेधा. ब्लू रोज़ पब्लिशर्स. pp. 1-120.
4. सिंह, एच. (1970). लोक प्रशासन. पियर्सन एजुकेशन इंडिया. pp. 15-150.
5. कथिकेयन, एम. (2018). आंतरिक सुरक्षा (सामान्य अध्ययन पेपर 3). पियर्सन एजुकेशन इंडिया. pp. 50-300.
6. शर्मा, आर. (2002). महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण. राजकमल प्रकाशन. pp. 60-220.
7. गुरु, के. पी. (2018). हिंदी व्याकरण. प्रभात प्रकाशन. pp. 10-250.
8. ओ'मैली, एल. एस. एस. (1910). बीरभूम (वॉल्यूम 19). बंगाल सेक्रेटेरिएट बुक डिपो. pp. 1-300.
9. एथे, एच. (1903). कैटलॉग ऑफ़ पर्शियन मैन्युस्क्रिप्ट्स. इंडिया ऑफिस. pp. 1-500.
10. पॉल, बी. सी. (2025). टू हू इट मे कंसर्न. pp. 1-10.

किशोरियों में पोषण की स्थिति एवं एनीमिया में अंतर्संबंध और उसका शारीरिक विकास पर प्रभाव

डॉ. प्रियादर्शनी कुमारी*

सार–

यह अध्ययन ग्रामीण क्षेत्र की 100 किशोरियों में पोषण की स्थिति एवं एनीमिया के प्रभावों का विश्लेषण करता है। परिणामों से पता चला कि लगभग 58 प्रतिशत किशोरियाँ एनीमिया से पीड़ित हैं, जो उनके शारीरिक विकास और सामान्य स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि नियमित नाश्ता, फल–सब्जियों का सेवन, और आयरन फोलिक एसिड टैबलेट का उपयोग एनीमिया की समस्या को काफी हद तक कम कर सकता है। सामाजिक–आर्थिक स्थिति का पोषण और स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव देखा गयाय निम्न आय वर्ग की किशोरियों में पोषण की कमी और एनीमिया अधिक पाया गया। इसके अतिरिक्त, जो किशोरियाँ नियमित शारीरिक गतिविधि करती हैं, उनका शारीरिक विकास बेहतर था। इस अध्ययन के आधार पर सुझाव दिए गए हैं कि पोषण संबंधी शिक्षा, सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन, और परिवारों में जागरूकता बढ़ाने के प्रयास करने चाहिए। इन उपायों से किशोरियों में पोषण की कमी और एनीमिया की समस्या को कम किया जा सकता है, जिससे उनका समग्र स्वास्थ्य और विकास बेहतर होगा।

विशिष्ट शब्द– *किशोरियाँ, पोषण स्थिति, एनीमिया, शारीरिक विकास, स्वास्थ्य जागरूकता, पोषण कमी, शारीरिक गतिविधि।*

किशोरावस्था (10 से 19 वर्ष) मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील चरण है। इस समय शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक रूप से तीव्र परिवर्तन होते हैं। विशेषकर किशोरियों के लिए यह समय अत्यंत निर्णायक होता है, क्योंकि इसी समय उनकी शारीरिक संरचना में प्रजनन योग्य महिला के रूप में बदलाव आता है। भारत जैसे विकासशील देशों में किशोरियों के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। पोषण की कमी और उससे संबंधित बीमारियाँ, विशेष रूप से एनीमिया। एनीमिया एक ऐसी स्थिति है जिसमें रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा सामान्य से कम हो जाती है, जिससे शरीर में ऑक्सीजन का प्रवाह प्रभावित होता है। भारत में हर दूसरी किशोरी एनीमिया से ग्रसित है, और इसका सबसे बड़ा कारण है अस्वस्थ आहार शैली व पोषण की कमी। कुपोषण और एनीमिया केवल स्वास्थ्य समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि यह किशोरियों के शारीरिक विकास, शैक्षिक प्रदर्शन, और भविष्य की मातृत्व स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। इस शोधपत्र में हम किशोरियों में पोषण की स्थिति का विश्लेषण करेंगे, एनीमिया से पीड़ित किशोरियों के मामलों का अध्ययन करेंगे, और समझेंगे कि इनका उनके शारीरिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है।

WHO रिपोर्ट (2021) विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, विकासशील देशों में 15–19 वर्ष की लगभग 50.00% लड़कियाँ एनीमिया से ग्रसित होती हैं। इसका सीधा संबंध उनके आहार, शिक्षा, और जीवनशैली से है।[1]

NFHS–5 (भारत, 2021) भारत में किशोरियों के स्वास्थ्य पर किए गए सर्वे में पता चला कि 55. 00% किशोरियों का हीमोग्लोबिन स्तर सामान्य से नीचे था। अधिकतर किशोरियाँ नियमित आयरन फोलिक एसिड टैबलेट का सेवन नहीं करतीं। बालिकाओं की शिक्षा और पारिवारिक जागरूकता पोषण स्तर पर असर डालती है।[2]

ICMR अध्ययन (2019) भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने बताया कि किशोरावस्था में आयरन की आवश्यकता दोगुनी हो जाती है। परंतु समाज में इसे गंभीरता से नहीं लिया जाता।[3]

यूनिसेफ रिपोर्ट कुपोषण के कारण किशोरियों की हड्डियों का विकास रुक जाता है, जिससे भविष्य में प्रजनन संबंधी समस्याएँ आती हैं।[4]

* पी–एच0डी0, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

किशोरावस्था एक ऐसा संवेदनशील काल है जिसमें शारीरिक और मानसिक विकास तीव्रता से होता है। इस अवधि में उचित पोषण अत्यंत आवश्यक होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट (2021) के अनुसार, विश्वभर में किशोरियों में एनीमिया एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है, खासकर विकासशील देशों में, जहां लगभग 50.00% लड़कियाँ इससे प्रभावित होती हैं।[5]

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5, 2021) के अनुसार, भारत में लगभग 55: किशोरियाँ एनीमिया से पीड़ित हैं। अध्ययन से पता चला है कि इस आयु वर्ग में आयरन की कमी, अपर्याप्त प्रोटीन, और विटामिन B_{12} का अभाव प्रमुख कारण हैं।[6] ICMR के शोध (2019) ने इस बात को बल दिया कि किशोरावस्था में आयरन की बढ़ी हुई आवश्यकता को पूरा न करने पर शारीरिक विकास बाधित होता है, जिससे ऊंचाई और वजन कम रहता है।[7]

यूनिसेफ की रिपोर्ट (2020) बताती है कि किशोरियों में कुपोषण केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और शिक्षा के स्तर पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। साथ ही, सामाजिक–आर्थिक कारक जैसे परिवार की आय, माता–पिता की शिक्षा, और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता भी पोषण स्तर को प्रभावित करते हैं।[8]

किशोरियों में पोषण की स्थिति और एनीमिया पर कई शोधों ने यह सिद्ध किया है कि यह समस्या केवल एक स्वास्थ्य विषय नहीं है, बल्कि इसका प्रभाव शारीरिक, मानसिक और शैक्षिक विकास पर भी पड़ता है।

गर्ग और शर्मा (2018) ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण क्षेत्रों में किशोरों के शारीरिक विकास पर पोषण की स्थिति का सीधा प्रभाव पड़ता है। जिन किशोरों को संतुलित आहार नहीं मिलता, उनका वजन और ऊंचाई औसत से कम पाई गई।[9]

कुमार और सिंह (2019) ने अपने शोध में किशोरियों में एनीमिया की व्यापकता और इसके सामाजिक–आर्थिक कारणों की पहचान की। उन्होंने बताया कि निम्न आय वर्ग, माता–पिता की शिक्षा की कमी, और स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता एनीमिया के मुख्य कारण हैं।[10]

शर्मा और वर्मा (2017) ने यह स्पष्ट किया कि एनीमिया से ग्रस्त किशोरों में जब आयरन सप्लीमेंटेशन नियमित रूप से दिया गया, तो उनके शारीरिक विकास के मानकोंकृजैसे कि वजन और ऊर्जा स्तरकृमें उल्लेखनीय सुधार देखा गया। इससे यह सिद्ध होता है कि उपचार और जागरूकता से एनीमिया को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।[11]

गुप्ता और रानी (2020) ने ग्रामीण किशोरियों में पोषण की स्थिति और उनके स्कूल प्रदर्शन के बीच गहरा संबंध पाया। कुपोषित किशोरियाँ अक्सर थकान, ध्यान की कमी, और शैक्षणिक प्रदर्शन में गिरावट का अनुभव करती हैं।[12]

इन सभी शोधों से यह निष्कर्ष निकलता है कि किशोरियों में पोषण की कमी और एनीमिया न केवल शारीरिक विकास में बाधक हैं, बल्कि शिक्षा और भविष्य की सामाजिक भूमिका को भी प्रभावित करते हैं। अतः यह आवश्यक है कि सरकार, विद्यालय और समुदाय मिलकर पोषण जागरूकता और स्वास्थ्य सुधार की दिशा में ठोस कदम उठाएँ।

अध्ययन की आवश्यकता– भारत में किशोरियों की जनसंख्या लगभग 12 करोड़ है, जो देश की कुल जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा है। इस आयु वर्ग की लड़कियाँ अपने जीवन की नींव रख रही होती हैं– परंतु विडंबना यह है कि इस महत्वपूर्ण दौर में उन्हें आवश्यक पोषण नहीं मिल पाता।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5) के अनुसार भारत की लगभग 55.00% किशोरियाँ एनीमिया से ग्रसित हैं। 40.00% किशोरियाँ कम वजन की श्रेणी में आती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और भी गंभीर है। किशोरियों में पोषण की कमी और एनीमिया न केवल उनके वर्तमान स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि यह भविष्य में होने वाली गर्भधारण की जटिलताओं, कमजोर संतान, और मातृ मृत्यु दर जैसे गंभीर परिणामों का कारण भी बन सकता है। इसलिए यह अध्ययन अत्यंत आवश्यक है ताकि समस्या की गहराई को समझा जा सके और समाधान की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकें।

अध्ययन का उद्देश्य– शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य किशोरियों में पोषण की स्थिति और एनीमिया के प्रभाव का मूल्यांकन करना है। साथ ही किशोरियों की सामान्य आहार शैली का अध्ययन करना। एनीमिया से पीड़ित किशोरियों के शारीरिक विकास पर प्रभाव का विश्लेषण। सामाजिक–आर्थिक कारकों का किशोरियों के पोषण

पर प्रभाव जानना। स्वास्थ्य सेवाओं और पोषण संबंधी सरकारी योजनाओं की पहुँच का मूल्यांकन। पोषण सुधार के लिए व्यवहारिक सुझाव प्रदान करना। यह अध्ययन आयामी एवं सर्वेक्षण आधारित है, जिसमें किशोरियों की पोषण स्थिति और एनीमिया के शारीरिक विकास पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया।

अध्ययन क्षेत्र गया जिला के 5 ग्रामिण क्षेत्र रहा है, इस क्षेत्र कुल आबादी से 13 से 19 वर्ष की आयु वर्ग की 100 किशोरियाँ पर अध्ययन किया गया जिसमें–

क. प्रश्नावली– किशोरियों के आहार, स्वास्थ्य, और जीवनशैली संबंधी प्रश्न थे।

ख. शारीरिक मापन– ऊंचाई, वजन, बॉडी मास इंडेक्स (BMI)

ग. रक्त परीक्षण– हीमोग्लोबिन स्तर जांचने के लिए रक्त का नमूना लिया गया

घ. साक्षात्कार– परिवार के सदस्यों और स्वास्थ्यकर्मियों से बातचीत के माध्यम से–

डेटा विश्लेषण– सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग (जैसे औसत, प्रतिशत, सांख्यिकीय परीक्षण) पोषण की कमी और एनीमिया के बीच संबंध का निर्धारण, शारीरिक विकास में एनीमिया का प्रभाव को देखना है–

ID	आयु	नाश्ता	फल– सब्जी	दूध उत्पाद	IFA टैबलेट	कमजोरी	ऊंचाई(cm)	ऊंचाई(cm)	वजन(kg)	परिवार आय (₹)	शारीरिक गतिविधि
1	13	नहीं	रोजाना	हाँ	नहीं	नहीं	नहीं	149	46	15000	हाँ
2	14	हाँ	रोजाना	हाँ	नहीं	नहीं	हाँ	152	48	15000	हाँ
3	15	नहीं	बहुत कम	नहीं	कभी–कभी	हाँ	हाँ	154	48	18000	कभी–कभी
4	16	नहीं	सप्ताह में	कभी–कभी	हाँ	हाँ	हाँ	155	49	15000	नहीं
5	17	हाँ	सप्ताह में	कभी–कभी	हाँ	हाँ	हाँ	158	52	16000	नहीं

प्राप्त जानकारी से स्पष्ट है किअ क्षेत्र में लगभग 60.00% किशोरियों को एनीमिया की समस्या है। जो किशोरियाँ नियमित नाश्ता करती हैं और पर्याप्त फल–सब्जियाँ खाती हैं, उनमें एनीमिया की संभावना कम है। वहीं निम्न आय वर्ग की किशोरियों में पोषण की कमी और एनीमिया ज्यादा पाया गया। नियमित शारीरिक गतिविधि करने वाली किशोरियों का वजन और ऊंचाई सामान्य से बेहतर है। जब कि IFA टैबलेट का नियमित सेवन एनीमिया को कम करने में सहायक है, लेकिन अधिकांश किशोरियाँ इसे नियमित नहीं लेतीं। इस लिए सरकार एवं नीजि संस्था द्वारा पोषण संबंधी शिक्षा एवं जागरूकता अभियान चलाना। साथ ही स्कूलों में आयरन सप्लीमेंटेशन कार्यक्रम को प्रभावी बनाना। परिवारों को पोषण की अहमियत समझाना तथा स्वास्थ्य जांच शिविरों का आयोजन करने कि आवश्यक्ता है।

➢ किशोरियों में पोषण की स्थिति एवं एनीमिया का शारीरिक विकास पर प्रभाव–

प्राथमिक आँकड़ों का सारांश

पैरामीटर	**प्रतिशत/मूल्य**
किशोरियों की आयु	**13 से 17 वर्ष**
नियमित नाश्ता	65.00%
रोज फल–सब्जी	55.00%
दूध उत्पाद सेवन	50.00%
IFA टैबलेट सेवन	40.00%
एनीमिया से ग्रसित	58.00%
नियमित शारीरिक गतिविधि	55.00%
औसत ऊंचाई (सेमी)	150 से 160 सेमी
औसत वजन (किलो)	38 से 48 किलो

एनीमिया की स्थिति और पोषण के बीच संबंध– उन किशोरियों में जो नियमित नाश्ता करती हैं, उनमें एनीमिया की दर 40.00% थी, जबकि जो नाश्ता नहीं करतीं उनमें यह दर 75.00% थी। रोज फल और सब्जी खाने वाली किशोरियों में एनीमिया का प्रतिशत 35.00% था, जबकि कम सेवन करने वालों में 70.00%। जो किशोरियाँ नियमित IFA टैबलेट लेती थीं, उनमें एनीमिया की दर 30.00% थी, जबकि न लेने वालों में 70.00%।

अतः हम कह सकते हैं कि संतुलित और नियमित आहार एवं आयरन सप्लीमेंटेशन से एनीमिया की संभावना काफी कम होती है।

एनीमिया और शारीरिक विकास–

क. एनीमिया से पीड़ित किशोरियों की औसत ऊंचाई 148 सेमी थी, जबकि स्वस्थ किशोरियों की औसत ऊंचाई 155 सेमी।

ख. वजन में भी अंतर था– एनीमिया वाली किशोरियों का औसत वजन 37 किलो था, जबकि स्वस्थ किशोरियों का औसत वजन 45 किलो।

ग. शारीरिक गतिविधि न करने वाली और एनीमिया से पीड़ित किशोरियों में थकान और कमजोरी की शिकायतें अधिक थीं।

अतः हम कह सकते हैं कि एनीमिया से किशोरियों के शारीरिक विकास में कमी आती है, जिससे उनका समग्र स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

सामाजिक–आर्थिक कारकों का प्रभाव–

क. निम्न आय वर्ग (5000 से कम मासिक आय) की किशोरियों में एनीमिया की दर 75.00% थी।

ख. मध्यम आय वर्ग (5000–15000) में 55.00%, और उच्च आय वर्ग (15000 से ऊपर) में 30.00%।

इस प्रकार परिवार की शिक्षा स्तर और जागरूकता का भी सीधा प्रभाव मिला। जहां माता–पिता शिक्षित थे, वहां पोषण बेहतर था।

IFA टैबलेट सेवन की स्थिति–

क. केवल 40.00% किशोरियाँ नियमित रूप से IFA टैबलेट लेती हैं।

ख. अधिकांश किशोरियाँ इसके महत्व को नहीं समझतीं या स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच नहीं होती।

ग. नियमित सेवन करने वाली किशोरियों में थकान और कमजोरी की शिकायत कम थी।

शारीरिक गतिविधि और स्वास्थ्य– नियमित शारीरिक गतिविधि करने वाली किशोरियों का BMI सामान्य सीमा में था। जिन किशोरियों में शारीरिक गतिविधि कम थी, उनमें वजन और ऊंचाई दोनों कम थे। शारीरिक गतिविधि का मानसिक स्वास्थ्य और ऊर्जा स्तर पर भी सकारात्मक प्रभाव देखा गया।

पोषण की कमी और एनीमिया किशोरियों के शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं। नियमित, संतुलित आहार, विशेषकर आयरन युक्त भोजन और IFA सप्लीमेंटेशन आवश्यक हैं। सामाजिक–आर्थिक स्थिति और परिवार की जागरूकता भी पोषण स्तर को प्रभावित करती है। स्वास्थ्य और पोषण सुधार के लिए समग्र प्रयास आवश्यक हैं।

चर्चा– अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि किशोरियों में पोषण की कमी तथा एनीमिया एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है जो उनके शारीरिक विकास और समग्र स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। अधिकांश किशोरियाँ असंतुलित आहार, विशेषकर आयरन और प्रोटीन की कमी के कारण इस समस्या से ग्रसित पाई गईं। यह समस्या विशेष रूप से उन किशोरियों में अधिक थी, जो आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों से संबंधित थीं। एनीमिया के कारण शारीरिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे किशोरियों की ऊंचाई, वजन, और सामान्य स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। साथ ही, थकान और कमजोरी के कारण उनकी शैक्षणिक दक्षता भी प्रभावित होती है। अध्ययन ने यह भी दर्शाया कि पारिवारिक शिक्षा, पोषण संबंधी जागरूकता, तथा सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता एनीमिया के स्तर को कम करने में सहायक हो सकती है।

निष्कर्ष– किशोरियों में पोषण की स्थिति सुधारना तथा एनीमिया को कम करना आवश्यक है ताकि वे शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहें और देश के उज्ज्वल भविष्य का हिस्सा बन सकें। इस अध्ययन ने यह सिद्ध किया कि उचित पोषण, विशेषकर आयरन की पूर्ति, किशोरियों के शारीरिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। सरकारी योजनाओं, स्कूलों, और परिवारों को मिलकर इस समस्या को समझना और समाधान करना होगा। साथ ही, किशोरियों में नियमित स्वास्थ्य जांच और पोषण संबंधी शिक्षा अनिवार्य करनी चाहिए।

सुझाव– स्कूलों में नियमित आयरन फोलिक एसिड (IFA) सप्लीमेंटेशन देना। पोषण शिक्षा के लिए कार्यक्रम चलाना, विशेषकर माता–पिता और किशोरियों के लिए। पौष्टिक आहार सुनिश्चित करने हेतु सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन। स्थानीय स्तर पर स्वास्थ्य शिविर लगाना और किशोरियों का नियमित परीक्षण। किशोरियों को मासिक धर्म स्वच्छता और पोषण पर जागरूक करना, तथा सामाजिक और आर्थिक सुधारों के माध्यम से गरीबी को कम करना।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2021), एनीमिया का वैश्विक प्रसार। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट।
2. एनएफएचएस–5, (2021), राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत।
3. आईसीएमआर, (2019), किशोरावस्था में पोषण संबंधी आवश्यकताएँ। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद।
4. यूनिसेफ। (2020), पोषण और किशोर। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष व स्थानीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण डेटा एवं प्रेक्षण।
5. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2021), एनीमिया का वैश्विक प्रसार और पोषण स्थिति।
6. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5, 2021), भारत तथ्य पत्रक– स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
7. भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (2019), किशोरों में पोषण संबंधी आवश्यकताएँ और स्थिति। ICMR प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (2020), पोषण और किशोर स्वास्थ्य। UNICEF रिपोर्ट।
9. गर्ग, एस., और शर्मा, पी. (2018), ग्रामीण क्षेत्रों में किशोरों के शारीरिक विकास पर पोषण स्थिति का प्रभाव। जर्नल ऑफ न्यूट्रिशन एंड हेल्थ साइंसेज, 5(2), 45–52।
10. कुमार, आर., और सिंह, ए. (2019), किशोरियों में एनीमिया का प्रसार और संबंधित सामाजिक–आर्थिक कारक। इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ, 63(3), 210–215।
11. शर्मा, वी., और वर्मा, एन. (2017) एनीमिया से ग्रस्त किशोरों में विकास मापदंडों पर आयरन सप्लीमेंटेशन का प्रभाव. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडोलसेंट मेडिसिन, 12(1), 30–37।
12. गुप्ता, एम., और रानी, एस. (2020) ग्रामीण किशोरियों में पोषण की स्थिति और स्कूल के प्रदर्शन पर इसका प्रभाव. जर्नल ऑफ कम्युनिटी हेल्थ, 15(4), 123–130।

समरसता की अवधारणा के आलोक में मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री–अस्तित्व का स्वरूप

डॉ. रीना*

सारांश

समरसता भारतीय विचारधारा का महत्वपूर्ण मानवीय सिद्धांत है, यह समानता, सह-अस्तित्व, एक-दूसरे के प्रति सम्मान और सामाजिक संतुलन पर निर्भर करता है। समरसता की अवधारण मात्र सामाजिक ढांचे तक सीमित नहीं है; यह व्यक्ति के आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा से भी गहनता से सम्बद्ध है। समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में मन्नू भंडारी ने स्त्री जीवन के संघर्ष, अपनी पहचान, आत्म-चेतना और सामाजिक संबंधों को संवेदनशील और यथार्थशील दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में स्त्री पारंपरिक भूमिकाओं तक ही सीमित नहीं रहतीं, अपितु वे अपने अस्तित्व, आत्मनिर्भरता और मानवाधिकारों की प्रखर आवाज बनकर उभरती हैं। इस शोध-आलेख का मुख्य उद्देश्य समरसता के सिद्धांत के संदर्भ में मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करना है। आलेख में उनकी प्रमुख रचनाओं को आधार बनाकर यह देखने का प्रयास किया गया है कि स्त्री-अस्तित्व केवल सामाजिक भूमिकाओं तक सीमित न होकर स्वतंत्र चेतना, निर्णय लेने की क्षमता, आत्म-सम्मान और संबंधों में समान भागीदारी भी उसके व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण भाग माने जाते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख यह भी प्रदर्शित करता है कि मन्नू भंडारी पुरुष और स्त्री के बीच संघर्ष पर ध्यान केंद्रित करने के स्थान पर संवाद और आपसी सम्मान को अधिक महत्व देती हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में मन्नू भंडारी की प्रमुख रचनाओं का गहन अवलोकन किया गया है। स्त्री अस्तित्व, समरसता, सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों के आपसी रिश्तों की समीक्षा की प्रस्तुत की गई है। अस्तु; मन्नू भंडारी का साहित्य स्त्री अस्तित्व को न केवल प्रतिरोध के दृष्टिकोण से देखती हैं। अपितु इसे समानता, गरिमा, आत्मनिर्णय और मानवीय समरसता के व्यापक संदर्भ में भी प्रस्तुत करती है। रचनाओं के माध्यम से समकालीन समाज में स्त्री की उपस्थिति और समरस सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में योगदान की दिशा में महत्वपूर्ण है।

बीज शब्द: समरसता, मन्नू भंडारी, स्त्री-अस्तित्व, हिंदी कथा-साहित्य, स्त्री-चेतना, समानता, मानवीय मूल्य।

समरसता की अवधारणा: अर्थ, स्वरूप एवं साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

"असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय॥" [1]

यह उपनिषद् मंत्र असत्य से सत्य, अज्ञान से ज्ञान तथा सीमितता से अमर मानवीय मूल्यों की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। समरसता की अवधारणा भी इसी मानवीय दृष्टि पर आधारित है, जिसमें समानता, सह-अस्तित्व, पारस्परिक सम्मान तथा प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा को स्वीकार किया जाता है। इसी संदर्भ में मन्नू भंडारी का साहित्य स्त्री-अस्तित्व, आत्मसम्मान और सामाजिक समरसता के संबंध को गहन संवेदनशीलता के साथ उद्घाटित करता है।

* हिन्दी साहित्य, नॉन कॉलेजिएट वुमेंस एजुकेशन बोर्ड, दिल्ली विश्वविद्यालय–110007
ईमेल आईडी–reenasingh7529@gmail.com

[1] बृहदारण्यक उपनिषद्, 1.3.28)

समरसता भारतीय संस्कृति और चिंतन का महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसका मुख्य उद्देश्य समाज में समानता, सह-अस्तित्व, एक-दूसरे के प्रति सम्मान और मानव गरिमा की स्थापित करना है। 'समरसता' का शाब्दिक अर्थ विविधताओं के मध्य संतुलन, सामंजस्य और एकता का अनुभव है। यह मात्र सामाजिक या सांस्कृतिक ढांचे का सिद्धांत नहीं है, अपितु मानव जीवन के नैतिक, मनोवैज्ञानिक और मानवीय पहलुओं से भी जुड़ा हुआ है। समरस समाज वह होता है, जहाँ जाति, वर्ग, लिंग, धर्म या आर्थिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता एवं हर व्यक्ति को समान सम्मान एवं विकास का अवसर प्राप्त होता है।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः।
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥"[2]

भारतीय चिंतन परंपरा में समरसता का गहरा संबंध 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और लोकमंगल जैसे सिद्धांतों से है।[3] इन सिद्धांतों का केंद्रीय विचार मानवता के प्रति समान दृष्टिकोण और पारस्परिक सहयोग को प्रोत्साहित करना रहा है। समरसता का अर्थ मात्र समानता स्थापित करना नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संबंधों में विश्वास, संवाद, संवेदना और दायित्व के विकास को भी दर्शाता है। परिणामस्वरूप समरसता को व्यक्ति और समाज के बीच संतुलित संबंधों की महत्वपूर्ण नींव माना गया है। साहित्य न केवल समाज का प्रतिनिधित्व करता है, अपितु सामाजिक जागरूकता का प्रचारक है। साहित्यकार रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन समय की सामाजिक समस्याओं, मानव संघर्षों और बदलते जीवन मूल्यों को सृजनात्मक रूप से प्रस्तुत करते हैं। इस संदर्भ में, समरसता साहित्य का महत्वपूर्ण सिद्धांत है, जो मानवता को अलगाव के बजाय सह-अस्तित्व, समानता और मानवीय रिश्तों की गरिमा का मार्गदर्शन करता है। विशेषकर स्त्री अस्मिता के संदर्भ में, समरसता का अर्थ मात्र स्त्री को पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित करना नहीं है, बल्कि उसे स्वतंत्रता, समान अधिकार, आत्मसम्मान और निर्णय लेने की क्षमता का सम्मान का अवसर प्रदान करना है। इस विचाराधार पर मन्नू भंडारी के साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है। उनकी रचनाओं में स्त्री अपने अस्तित्व की खोज के साथ-साथ सामाजिक संबंधों, पारिवारिक जिम्मेदारियों और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती है। इस कारण, समरसता की अवधारणा के संदर्भ में मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री-अस्तित्व का विश्लेषण न केवल स्त्री-चेतना को समझने का साधन है, अपितु समानता, मानवीय सम्मान, और संतुलित सामाजिक संबंधों की स्थापना हेतु महत्वपूर्ण विमर्श प्रस्तुत करता है।

मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री-अस्तित्व का स्वरूप

"या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥"[4]

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में स्त्री को शक्ति, सृजन और जीवन की आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह श्लोक समस्त प्राणियों में विद्यमान स्त्री-शक्ति के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है। समरसता की अवधारणा भी प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा, समानता और अस्तित्व के सम्मान पर आधारित है। इसी दृष्टि से मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री-अस्तित्व का स्वरूप केवल सामाजिक भूमिका तक सीमित न रहकर आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा का प्रतिनिधित्व करता है।

---

[2] मार्कण्डेय पुराण, *दुर्गा सप्तशती (देवी माहात्म्य)*, गोरखपुर: गीता प्रेस, नवीन संस्करण

[3] महाउपनिषद्, *महाउपनिषद्*, गोरखपुर: गीता प्रेस, नवीन संस्करण

[4] दुर्गा सप्तशती, अध्याय 5, श्लोक 16

आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में मन्नू भंडारी की पहचान विशेष रचनाकर के रूप में स्थापित है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥"[5]

उन्होंने अपने कथा-लेखन के माध्यम से स्त्री-जीवन की जटिलताओं, मानसिक द्वंद्वों, सामाजिक संघर्षों और आत्म-सम्मान जैसे विषयों को अत्यंत संवेदनशील और वास्तविक रूप से प्रस्तुत किया है। उनके लेखन में स्त्री पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करने वाली पारंपरिक परिकल्पना तक सीमित नहीं है। बल्कि, वह अपनी पहचान, स्वतंत्र विचार और आत्मनिर्णय की चेतना के साथ पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। "अपने होने का एहसास ही व्यक्ति को जीने की शक्ति देता है।"[6] यही कारण है कि उनके साहित्य में स्त्री के अस्तित्व की धारणा समरसता के विचार के संदर्भ में विकसित होती है। मन्नू भंडारी की लेखन में महिला का आत्म- विस्मरण और पहचान की खोज प्रमुखता से दृष्टिगत होती है। उनकी नायिकाएँ पारंपरिक मान्यताओं और सामाजिक बंधनों को केवल स्वीकार नहीं करतीं, बल्कि अपने अस्तित्व और अधिकारों के प्रति सजग रहती हैं। "मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान उसका आत्मसम्मान है।"[7] वे अपने निर्णय स्वयं लेने की क्षमता रखती हैं और आत्मसम्मान के साथ जीवन व्यतीत करने का प्रयास करती हैं। इस आत्मचेतना के माध्यम से वे अधिकारों की माँग करने वाली स्त्री के रूप में ही नहीं, बल्कि अपने कर्तव्यों और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति भी संवेदनशीलता प्रस्तुत करती हैं। आत्मनिर्णय और स्वतंत्र व्यक्तित्व मन्नू भंडारी के स्त्री पात्रों की विशेष पहचान है। "जीवन का सत्य केवल सामाजिक स्वीकृति में नहीं, बल्कि अपने निर्णयों के प्रति ईमानदार रहने में है।"[8] उनके लेखन में स्त्रियां अपने जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णयों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं तथा चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों का सामना भी करती हैं, किन्तु अपनी वैचारिक स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा से समझौता नहीं करतीं। यह स्वतंत्रता किसी विद्रोह का केवल प्रतीक मात्र नहीं है; बल्कि यह समानता और सम्मान पर आधारित संतुलित सामाजिक संबंधों की स्थापना की स्वस्थ दिशा में प्रयास भी है। मन्नू भंडारी ने पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के संदर्भ में स्त्री की भूमिका को एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है।[9] उपन्यास "आपका बंटी" में पारिवारिक विघटन का प्रयास केवल दांपत्य संबंधों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्त्री की भावनात्मक स्थिति और सामाजिक जिम्मेदारियों पर भी गहरा प्रभाव डालता है। हालांकि, नायिका को भावनात्मक अनुभवों और आत्म-सम्मान के आधार पर निर्णय लेने की क्षमता प्रदान की गयी है। इसी प्रकार, रचनाएँ जैसे "त्रिशंकु" और "एक इंच मुस्कान" में भी स्त्री अपने व्यक्तित्व, भावनाओं और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती है। मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री के अस्तित्व का रूप समरसता की भावना से गहराई से जुड़ा प्रतीत होता है। लेखिका द्वारा प्रस्तुत स्त्री-पात्र पुरुष-विरोध की बजाय समानता, संवाद, पारस्परिक सम्मान और मानवीय संबंधों की गरिमा को प्राथमिकता देते हैं। भंडारी इस विचार को स्पष्ट करती हैं कि वास्तविकता समरसता तभी प्राप्त की जा सकती है जब स्त्रियों को स्वतंत्र व्यक्तित्व, समान अवसर और मानवीय गरिमा के साथ स्वीकार किया जाए। इस दृष्टिकोण से, मन्नू भंडारी का साहित्य स्त्री-अस्तित्व को सामाजिक परिवर्तन और समरस मानवीय समाज के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण आधार के रूप में प्रस्तुत करती है।

---

[5] मनु, *मनुस्मृति*, गोरखपुर: गीता प्रेस, नवीन संस्करण

[6] भंडारी, मन्नू, *यही सच है* (कहानी-संग्रह), नई दिल्ली: अक्षर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1966

[7] भंडारी, मन्नू, *त्रिशंकु* (कहानी-संग्रह), नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978

[8] भंडारी, मन्नू, *त्रिशंकु* (कहानी-संग्रह), नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978

[9] भंडारी, मन्नू, *आपका बंटी*, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1971

"तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की॥"[10]

यह पंक्तियाँ स्त्री-पुरुष संबंधों में शक्ति-संतुलन और पारस्परिक सम्मान के महत्व को अभिव्यक्त करती हैं। यह विचार मन्नू भंडारी के साहित्यिक दृष्टिकोण से भी साम्य रखता है, जहाँ संबंध संघर्ष पर नहीं बल्कि संवाद और समानता पर आधारित होते हैं।

समरसता के आलोक में मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री-अस्तित्व की प्रासंगिकता

समरसता का मूल आधार समानता, सह-अस्तित्व, संवाद और मानवीय गरिमा है। यह मात्र सामाजिक संतुलन का विषय नहीं है, बल्कि यह एक मानवीय दृष्टिकोण है जो प्रत्येक व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व और सम्मान को स्वीकृति प्रदान है। मन्नू भंडारी के साहित्य में स्त्री-अस्तित्व का स्वरूप मानवीय समरसता के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। उनके कथा-साहित्य में स्त्री और पुरुष के संबंध संघर्ष, वर्चस्व या प्रतिस्पर्धा पर नहीं, बल्कि संवाद, पारस्परिक सम्मान और संवेदनशीलता पर आधारित हैं। यह दृष्टिकोण हमें बेहतर समाज की ओर ले जाने में मदद कर सकता है। मन्नू भंडारी की दृष्टि उनके साहित्य को समकालीन सामाजिक विमर्श में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। भंडारी की रचनाएँ प्रदर्शित करती हैं कि स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए स्त्री और पुरुष दोनों की समान भागीदारी महत्वपुर्ण है। सामाजिक समरसता तभी संभव है जब स्त्री और पुरुष को समान अधिकार, समान अवसर, और स्वतंत्र निर्णय लेने का अवसर प्राप्त हो । मन्नू भंडारी के स्त्री पात्र अपनी अस्मिता और आत्मसम्मान को महत्व देते हुए भी संबंधों को बेहतर और संतुलित बनाने का प्रयास करते है इस प्रकार, उनका संघर्ष व्यक्तिगत अधिकारों से आगे बढ़कर लोगों में जागरूकता और मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देने का माध्यम बन जाता है। स्त्री-अस्तित्व को मानवीय मूल्यों से जोड़ना, मन्नू भंडारी की साहित्यिक दृष्टि का महत्वपूर्ण पक्ष है। उनके साहित्य में स्त्री केवल परिवार तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह एक सोच-समझकर काम लेने वाली, संवेदनशील और जिम्मेदार नागरिक के रूप में भी प्रस्तुत होती है। आत्मनिर्णय, स्वाभिमान, समानता, करुणा, संवेदना और उत्तरदायित्व जैसे मूल्य उनके स्त्री पात्रों के व्यक्तित्व को मजबूत बनाते हैं। यही मूल्य एक समरस समाज बनाने के लिए भी आवश्यक हैं। ऐसा समाज तभी बन सकता है जब हर किसी को उसकी गरिमा और अधिकारों के साथ स्वीकार किया जाए। समकालीन समाज में लिंग समानता, स्त्री अधिकार और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दे लगातार विमर्श का केंद्र रहे हैं। परिणामस्वरूप यह बोला जा सकता है मन्नू भंडारी का साहित्य बहुत ही प्रासंगिक लगता है। उनकी रचनाएँ एक महत्वपूर्ण बात कहती हैं, स्त्रियों की स्वतंत्रता का मतलब सामाजिक संबंधों से दूर होना नहीं है, बल्कि समानता, संवाद और एक दूसरे के प्रति सम्मान पर आधारित स्वस्थ संबंध बनाने की बात प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टिकोण से, उनका साहित्य स्त्री विमर्श को केवल विरोध तक सीमित नहीं करता, बल्कि इसे मानवीय समझ और सामाजिक दायित्व के व्यापक दृष्टिकोण से जोड़ता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी के लेखन में स्त्री अस्मिता की अवधारणा मात्र व्यक्तिगत पहचान का विषय न होकर समानता, मानवता का सम्मान और सामाजिक संतुलन स्थापित करने का विषय भी है। उनके लेखन में स्त्री अपनी गरिमा, अपनी पहचान और अपनी मानवीय संवेदनाओं के ज़रिए एक समरस समाज की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। इस तरह, मन्नू भंडारी की रचनाएँ हिंदी साहित्य में स्त्रियों की पहचान और समरसता के बीच के संबंधों को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।

[10] प्रसाद जयशकर,कामायनी , इड़ा सर्ग, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994

संदर्भ सूची

1. बृहदारण्यक उपनिषद्, 1.3.28)
2. मार्कण्डेय पुराण, *दुर्गा सप्तशती (देवी माहात्म्य)*, गोरखपुर: गीता प्रेस, नवीन संस्करण
3. महाउपनिषद्, *महाउपनिषद्*, गोरखपुर: गीता प्रेस, नवीन संस्करण
4. दुर्गा सप्तशती, अध्याय 5, श्लोक 16
5. मनु, *मनुस्मृति*, गोरखपुर: गीता प्रेस, नवीन संस्करण
6. भंडारी, मन्नू, *यही सच है* (कहानी-संग्रह), नई दिल्ली: अक्षर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1966
7. भंडारी, मन्नू, *त्रिशंकु* (कहानी-संग्रह), नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978
8. भंडारी, मन्नू, *आपका बंटी*, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1971
9. प्रसाद, जयशंकर, *कामायनी* (इड़ा सर्ग), नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1994
10. भंडारी, मन्नू, *महाभोज* (उपन्यास), नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1982
11. भंडारी, मन्नू, *एक इंच मुस्कान* (उपन्यास), नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1979
12. वर्मा, महादेवी, *श्रृंखला की कड़ियाँ*, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, संशोधित संस्करण, 2005
13. वर्मा, महादेवी, *यामा*, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, संशोधित संस्करण, 2007
14. गुप्त, मैथिलीशरण, *भारत-भारती*, नई दिल्ली: साहित्य भवन, संशोधित संस्करण, 2010
15. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, *आंगन के पार द्वार*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1961
16. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, संशोधित संस्करण, 2008
17. शर्मा, रामविलास, *आधुनिक साहित्य और समाज*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, संशोधित संस्करण, 2004
18. नामवर सिंह, *आलोचना की संस्कृति*, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1982
19. नगेन्द्र, डॉ., *आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास*, नई दिल्ली: मयूर पेपरबैक्स, संशोधित संस्करण, 2006
20. सिंह, बच्चन, *आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास*, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, संशोधित संस्करण, 2005
21. सिंह, नामवर, *कहानी : नई कहानी*, नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1966

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर किसान आंदोलनों का प्रभाव : एक ऐतिहासिक अध्ययन (1912–1947)

श्वेता नेहा*
प्रो. प्रवेश भारद्वाज**

सारांशिका

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का आंदोलन नहीं था, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का भी व्यापक अभियान था। इस संघर्ष में किसान आंदोलनों ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। औपनिवेशिक शासन की दमनकारी भू-राजस्व व्यवस्था, जमींदारी शोषण, बेगार, अवैध करों तथा नील जैसी बाध्यकारी कृषि प्रणालियों ने किसानों को संगठित प्रतिरोध के लिए प्रेरित किया। चंपारण, खेड़ा, बारडोली, अवध तथा बिहार के विभिन्न किसान आंदोलनों ने न केवल ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना का विकास किया, बल्कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी ग्रामीण आधार प्रदान किया। इन आंदोलनों ने किसानों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ते हुए स्वतंत्रता संघर्ष को जन-आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया। महात्मा गांधी, स्वामी सहजानंद सरस्वती, सरदार वल्लभभाई पटेल तथा अन्य नेताओं ने किसान समस्याओं को राष्ट्रीय विमर्श का विषय बनाया। प्रस्तुत शोध-पत्र में 1912 से 1947 के मध्य किसान आंदोलनों के स्वरूप, उनके सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि किसान आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विस्तार, जनाधार के निर्माण तथा औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध व्यापक जनप्रतिरोध को संगठित करने में निर्णायक सिद्ध हुए।

प्रमुख शब्द : किसान आंदोलन, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रीय आंदोलन, चंपारण सत्याग्रह, स्वामी सहजानंद सरस्वती, सामाजिक परिवर्तन, बिहार।

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास केवल राजनीतिक नेताओं अथवा राष्ट्रीय संस्थाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि इसकी वास्तविक शक्ति ग्रामीण भारत के करोड़ों किसानों में निहित थी। औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियों ने भारतीय कृषि व्यवस्था को गहरे संकट में डाल दिया। अत्यधिक भूमि-राजस्व, जमींदारी शोषण, महाजनी व्यवस्था, बेगार तथा कृषि उत्पादों के कम मूल्य ने किसानों के जीवन को अत्यंत कठिन बना दिया। परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में किसान आंदोलनों का विकास हुआ, जिन्होंने स्थानीय समस्याओं से आगे बढ़कर राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष को नई दिशा प्रदान की।[1]

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में किसान आंदोलन केवल आर्थिक अधिकारों की मांग तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने औपनिवेशिक शासन की वैधता को चुनौती दी। विशेष रूप से चंपारण सत्याग्रह (1917) ने यह सिद्ध कर दिया कि किसानों की समस्याओं को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़कर व्यापक जनसमर्थन प्राप्त किया जा सकता है। इसके बाद खेड़ा, बारडोली, अवध तथा बिहार किसान सभा जैसे आंदोलनों ने ग्रामीण

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
** विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

[1] चन्द्र, बिपन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; पनिक्कर, के. एन.; एवं महाजन, सुचेता। (1989). इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस (1857-1947). नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स। पृ. 161-162

समाज में राजनीतिक चेतना का विस्तार किया। यही कारण है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन धीरे-धीरे अभिजात वर्ग के आंदोलन से निकलकर जन-आधारित राष्ट्रीय आंदोलन में परिवर्तित हुआ।

प्रमुख किसान आंदोलनों का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर प्रभाव

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को जन-आधारित आंदोलन बनाने में विभिन्न किसान आंदोलनों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। इन आंदोलनों ने न केवल किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को राष्ट्रीय विमर्श का विषय बनाया, बल्कि औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध व्यापक जनप्रतिरोध को भी संगठित किया। इन संघर्षों ने ग्रामीण जनता में राजनीतिक जागरूकता, संगठनात्मक क्षमता तथा राष्ट्रीय एकता की भावना को सुदृढ़ किया। साथ ही, किसान आंदोलनों ने स्वतंत्रता संग्राम को सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के व्यापक उद्देश्यों से जोड़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन को अधिक समावेशी स्वरूप प्रदान किया। चंपारण, खेड़ा, बारडोली, अवध तथा बिहार के किसान आंदोलनों ने स्वतंत्रता संघर्ष को नई दिशा प्रदान की और यह सिद्ध किया कि ग्रामीण भारत की सक्रिय भागीदारी के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति संभव नहीं थी।[2]

चंपारण सत्याग्रह (1917)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में किसान आंदोलन के रूप में चंपारण सत्याग्रह का विशेष स्थान है। बिहार के चंपारण जिले में अंग्रेज़ नील उत्पादकों द्वारा किसानों को 'तीनकठिया प्रथा' के अंतर्गत जबरन नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता था। किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिलता था तथा उन्हें अनेक प्रकार के अवैध करों और अत्याचारों का सामना करना पड़ता था। स्थानीय किसान नेता राजकुमार शुक्ल के आग्रह पर महात्मा गांधी चंपारण पहुँचे और किसानों की समस्याओं का प्रत्यक्ष अध्ययन किया। व्यापक जनसंपर्क, सत्याग्रह तथा अहिंसक प्रतिरोध के माध्यम से गांधी ने ब्रिटिश सरकार को तीनकठिया प्रथा समाप्त करने के लिए बाध्य किया।[3]

चंपारण सत्याग्रह का प्रभाव केवल स्थानीय स्तर तक सीमित नहीं रहा। इस आंदोलन ने पहली बार यह सिद्ध किया कि अहिंसक जनसंघर्ष औपनिवेशिक शासन को झुकाने में सक्षम है। इससे गांधी राष्ट्रीय नेता के रूप में स्थापित हुए तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नई रणनीति प्राप्त हुई। साथ ही, लाखों किसानों में राजनीतिक चेतना और आत्मविश्वास का विकास हुआ।

खेड़ा सत्याग्रह (1918)

गुजरात के खेड़ा जिले में 1918 में भीषण अकाल के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी। इसके बावजूद ब्रिटिश सरकार ने भूमि-राजस्व में कोई राहतदेने से इनकार कर दिया। महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल तथा अन्य नेताओं के नेतृत्व में किसानों ने सामूहिक रूप से कर भुगतान का बहिष्कार किया।किसानों ने सत्याग्रह के सिद्धांतों का पालन करते हुए अहिंसक ढंग से प्रशासन का विरोध किया तथा राजस्व वसूली के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध प्रस्तुत किया। इस आंदोलन में ग्रामीण समाज की व्यापक भागीदारी ने राष्ट्रीय नेतृत्व और किसानों के बीच विश्वास तथा सहयोग को और अधिक सुदृढ़ किया। अंततः सरकार को झुकना पड़ा और कर वसूली में राहत प्रदान करनी पड़ी ।[4]

---

[2]चन्द्र, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; पनिक्कर, के. एन.; एवं महाजन, सुचेता। (1989). इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस (1857-1947). नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स। पृ. 161-165

[3]गांधी, मोहनदास करमचन्द। (1928). चंपारण में सत्याग्रह. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन। भूमिका, पृ. viii-ix

[4]ब्राउन, जुडिथ एम. (1977). गांधी का उदय : भारतीय राजनीति (1915-1922). कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस। पृ. 108-112।

खेड़ा सत्याग्रह ने यह स्पष्ट कर दिया कि संगठित किसान शक्ति औपनिवेशिक प्रशासन को अपनी नीतियों में परिवर्तन करने के लिए विवश कर सकती है। इस आंदोलन ने किसानों में अनुशासन, संगठन तथा राष्ट्रीय नेतृत्व के प्रति विश्वास को मजबूत किया।

बारडोली सत्याग्रह (1928)

बारडोली सत्याग्रह भारतीय किसान आंदोलनों का एक और महत्वपूर्ण चरण था। जब ब्रिटिश सरकार ने भूमि-राजस्व में लगभग 30 प्रतिशत वृद्धि की, तब सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसानों ने कर भुगतान से इंकार कर दिया। आंदोलन पूरी तरह शांतिपूर्ण और अनुशासित रहा। अंततः सरकार को कर वृद्धि वापस लेनी पड़ी तथा किसानों की मांगों को स्वीकार करना पड़ा ।[5]

बारडोली की सफलता का प्रभाव राष्ट्रीय राजनीति पर अत्यंत व्यापक पड़ा। इस आंदोलन ने किसानों में यह विश्वास उत्पन्न किया कि एकजुट होकर अन्यायपूर्ण शासन का प्रभावी ढंग से विरोध किया जा सकता है। इसी आंदोलन के बाद वल्लभभाई पटेल को "सरदार" की उपाधि प्राप्त हुई।

अवध किसान आंदोलन

उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में किसानों को तालुकेदारों द्वारा अत्यधिक लगान, बेगार तथा अवैध वसूली का सामना करना पड़ता था। बाबा रामचंद्र तथा अन्य स्थानीय नेताओं के नेतृत्व में किसानों ने इन अत्याचारों के विरुद्ध संगठित संघर्ष प्रारंभ किया। इस आंदोलन को कांग्रेस के असहयोग आंदोलन से भी समर्थन प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप किसान प्रश्न राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया।[6]

अवध किसान आंदोलन ने यह स्पष्ट किया कि किसानों की आर्थिक समस्याएँ औपनिवेशिक शासन और सामंती व्यवस्था दोनों से जुड़ी हुई थीं। इसने स्वतंत्रता संग्राम को सामाजिक न्याय के प्रश्नों से भी जोड़ दिया।

बिहार किसान आंदोलन

बिहार में किसान आंदोलनों ने स्वतंत्रता संग्राम को विशेष रूप से प्रभावित किया। स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में बिहार प्रांतीय किसान सभा तथा बाद में अखिल भारतीय किसान सभा ने किसानों को संगठित कर जमींदारी शोषण, बेदखली, बकास्त भूमि तथा अत्यधिक लगान के विरुद्ध व्यापक आंदोलन चलाए। इन आंदोलनों ने किसानों को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाया तथा उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन का सक्रिय अंग बनाया।

स्वामी सहजानंद सरस्वती ने स्पष्ट किया कि किसानों की आर्थिक मुक्ति और भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। उनके नेतृत्व में बिहार के किसान असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन में बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। इससे ब्रिटिश शासन के विरुद्ध ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक प्रतिरोध विकसित हुआ।[7]

इन सभी किसान आंदोलनों का संयुक्त प्रभाव भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर अत्यंत गहरा पड़ा। प्रथम, इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को ग्रामीण जनाधार प्रदान किया।[8] द्वितीय, किसानों में राजनीतिक जागरूकता,

---

[5]चन्द्र, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; पनिक्कर, के. एन.; एवं महाजन, सुचेता। (1989). इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस (1857-1947). नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स। पृ. 279-281

[6]देसाई, ए. आर. (1979). भारत में किसान संघर्ष. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस। पृ. 19-23

[7]सरस्वती, स्वामी सहजानंद (1952). मेरा जीवन संघर्ष. पटना: सीताराम आश्रम. पृष्ठ संख्या: 285-290.

[8]सरकार, एस. (1983). मॉडर्न इंडिया: 1885-1947. नई दिल्ली: मैकमिलन. पृष्ठ संख्या: 198-203.

संगठनात्मक क्षमता तथा आत्मविश्वास का विकास किया।[9] तृतीय, कांग्रेस को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त हुआ तथा उसका प्रभाव गाँव-गाँव तक पहुँचा। चतुर्थ, औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियों की वास्तविकता पूरे देश के सामने आई। अंततः किसान आंदोलनों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को केवल राजनीतिक आंदोलन न रहने देकर सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के व्यापक जनसंघर्ष में परिवर्तित कर दिया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रमुख किसान आंदोलनों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नई ऊर्जा, व्यापक जनाधार तथा वैचारिक गहराई प्रदान की। स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रक्रिया में उनका योगदान केवल सहयोगी नहीं, बल्कि निर्णायक था।

किसान आंदोलनों का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर समग्र प्रभाव

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विकास में किसान आंदोलनोंकी भूमिका केवल सहायक नहीं थी, बल्कि उन्होंने इस संघर्ष के स्वरूप, रणनीति और जनाधार को मूलभूत रूप से परिवर्तित किया। प्रारंभिक राष्ट्रीय आंदोलन जहाँ मुख्यतः शिक्षित मध्यम वर्ग तक सीमित था, वहीं किसान आंदोलनों ने इसे गाँवों तक पहुँचाकर वास्तविक जन-आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया। करोड़ों किसानों की भागीदारी ने स्वतंत्रता संग्राम को व्यापक सामाजिक वैधता प्रदान की तथा ब्रिटिश शासन की प्रशासनिक और आर्थिक नीतियों को गंभीर चुनौती दी।[10]

किसान आंदोलनों का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक विस्तार के रूप में दिखाई देता है। चंपारण, खेड़ा, बारडोली तथा बिहार के किसान संघर्षों ने ग्रामीण समाज को राष्ट्रीय राजनीति से जोड़ा। पहले जहाँ किसान स्वयं को केवल स्थानीय समस्याओं तक सीमित मानते थे, वहीं इन आंदोलनों के बाद वे स्वयं को राष्ट्रव्यापी स्वतंत्रता संघर्ष का सक्रिय भागीदार समझने लगे।[11] इस परिवर्तन ने भारतीय राष्ट्रवाद को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया।

इन आंदोलनों ने औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियों की वास्तविकता को भी उजागर किया। भूमि-राजस्व की कठोर व्यवस्था, जमींदारी शोषण, बेगार, महाजनी ऋण तथा जबरन कृषि जैसी समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बनाया गया। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी अपने राजनीतिक कार्यक्रमों में किसानों की समस्याओं को सम्मिलित करना पड़ा। ग्रामीण भारत और किसान आंदोलनों के संपर्क ने कांग्रेस के दृष्टिकोण को बदला।इसके बाद ही कांग्रेस केवल मध्यम वर्ग तक सीमित न रहकर एक जन-आंदोलन बनी और उसने अपने प्रस्तावों में कृषि संकट व भूमि सुधारों को प्राथमिकता देना शुरू किया।[12]1930 के दशक के बाद कांग्रेस के अनेक प्रस्तावों में भूमि सुधार, लगान में कमी तथा किसानों के अधिकारों से संबंधित विषयों को प्रमुखता दी गई ।

किसान आंदोलनों ने राष्ट्रीय नेतृत्व को भी नई दिशा प्रदान की। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह और अहिंसा की जिस रणनीति को चंपारण में सफलतापूर्वक प्रयोग किया, वही आगे चलकर असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन की आधारशिला बनी। इसी प्रकार स्वामी सहजानंद सरस्वती, सरदार वल्लभभाई पटेल, बाबा रामचंद्र तथा अन्य किसान नेताओं ने यह सिद्ध किया कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक होगी जब सामाजिक एवं आर्थिक न्याय भी सुनिश्चित किया जाए। इस प्रकार किसान प्रश्न राष्ट्रीय आंदोलन की विचारधारा का अभिन्न अंग बन गया।

---

[9]पांडे, जी. (1978). द असेंडेन्सी ऑफ द कांग्रेस इन उत्तर प्रदेश: क्लास एंड को-ऑपशन इन एग्रेरियन पॉलिटिक्स, 1920-1934. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृष्ठ संख्या: 164-169.

[10]चन्द्र, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; पनिक्कर, के. एन.; एवं महाजन, सुचेता। (1989). इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस (1857-1947). नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स। पृ. 184-189

[11]देसाई, ए. आर. (1979). सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनेलिज्म. बॉम्बे: प्रकाशन. पृष्ठ संख्या: 174-179.

[12]नेहरू, जे. (1946). द डिस्कवरी ऑफ इंडिया. कलकत्ता: द सिग्नत प्रेस. पृष्ठ संख्या: 358-363.

किसान आंदोलनों का एक महत्वपूर्ण प्रभाव ग्रामीण समाज में लोकतांत्रिक चेतना का विकास भी था। इन आंदोलनों के माध्यम से किसानों ने संगठन निर्माण, सामूहिक नेतृत्व, जनसभाओं, शांतिपूर्ण प्रतिरोध तथा अधिकारों की मांग जैसी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किया। इससे ग्रामीण भारत में राजनीतिक सहभागिता की भावना विकसित हुई और स्वतंत्र भारत के लोकतांत्रिक ढाँचे के लिए सामाजिक आधार तैयार हुआ।

इन आंदोलनों ने सामाजिक परिवर्तन को भी गति प्रदान की। किसान सभाओं में विभिन्न जातियों, वर्गों तथा समुदायों के लोग एक साथ संगठित हुए, जिससे सामाजिक समरसता और समानता की भावना को बल मिला। विशेषकर बिहार में किसान आंदोलनों ने पिछड़े वर्गों, दलितों तथा भूमिहीन किसानों को संगठित कर सामाजिक न्याय के प्रश्न को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया। इससे स्वतंत्रता संग्राम केवल विदेशी शासन के विरोध तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी माध्यम बन गया।

हालाँकि किसान आंदोलनों की कुछ सीमाएँ भी थीं। अनेक आंदोलन क्षेत्रीय स्वरूप के थे तथा विभिन्न प्रांतों के किसान संगठनों के बीच वैचारिक एवं संगठनात्मक एकरूपता का अभाव था। कांग्रेस और किसान सभा के बीच भी कई अवसरों पर रणनीतिक मतभेद उत्पन्न हुए, विशेषकर वर्ग संघर्ष, जमींदारी उन्मूलन तथा कृषि सुधारों के प्रश्न पर। इसके अतिरिक्त भूमिहीन कृषि मजदूरों की समस्याओं को सभी किसान आंदोलनों में समान महत्व नहीं मिल पाया। फिर भी इन सीमाओं के बावजूद किसान आंदोलनों का ऐतिहासिक महत्व कम नहीं होता, क्योंकि उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अभूतपूर्व जनशक्ति प्रदान की।

अंततः यह कहा जा सकता है कि किसान आंदोलनों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को केवल राजनीतिक संघर्ष न रहने देकर सामाजिक, आर्थिक और लोकतांत्रिक अधिकारों के व्यापक आंदोलन में परिवर्तित कर दिया। ग्रामीण भारत की सक्रिय भागीदारी ने ब्रिटिश शासन की नींव को कमजोर किया तथा स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान की।

उपसंहार

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का सम्यक् अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि किसान आंदोलनों के बिना राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता की कल्पना करना कठिन है। औपनिवेशिक शासन की शोषणकारी कृषि एवं राजस्व नीतियों ने किसानों को संगठित प्रतिरोध के लिए प्रेरित किया, जिसने धीरे-धीरे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। चंपारण, खेड़ा, बारडोली, अवध तथा बिहार के किसान आंदोलनों ने किसानों में राजनीतिक चेतना, संगठनात्मक क्षमता तथा राष्ट्रीय भावना का विकास किया।

इन आंदोलनों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को व्यापक ग्रामीण आधार प्रदान किया तथा स्वतंत्रता संग्राम को जन-आंदोलन में परिवर्तित कर दिया। साथ ही, सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता तथा लोकतांत्रिक अधिकारों जैसे प्रश्नों को राष्ट्रीय विमर्श का अभिन्न अंग बनाया। स्वामी सहजानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल तथा अन्य किसान नेताओं के प्रयासों ने यह सिद्ध किया कि राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक-आर्थिक न्याय परस्पर पूरक हैं।

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भूमि सुधार, भूमिहीनता तथा ग्रामीण असमानता जैसी अनेक समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुईं, फिर भी किसान आंदोलनों ने भारतीय लोकतंत्र की सामाजिक आधारशिला के निर्माण में अमूल्य योगदान दिया। इस दृष्टि से किसान आंदोलन केवल स्वतंत्रता संग्राम का एक अध्याय नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय लोकतांत्रिक चेतना, सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्र-निर्माण की सतत प्रक्रिया के महत्वपूर्ण आधार भी हैं।

संदर्भ सूची

1. गांधी, मोहनदास करमचन्द। (1928). चंपारण में सत्याग्रह. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन। भूमिका, पृ. viii-ix.
2. नेहरू, जे. (1946). द डिस्कवरी ऑफ इंडिया. कलकत्ता: द सिग्नत प्रेस। पृष्ठ संख्या: 358-363.
3. सरस्वती, स्वामी सहजानंद। (1952). मेरा जीवन संघर्ष. पटना: सीताराम आश्रम। पृष्ठ संख्या: 285-290.
4. ब्राउन, जुडिथ एम. (1977). गांधी का उदय: भारतीय राजनीति (1915-1922). कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस। पृ. 108-112।
5. पांडे, जी. (1978). द असेंडेन्सी ऑफ द कांग्रेस इन उत्तर प्रदेश: क्लास एंड को-ऑपशन इन एग्रेरियन पॉलिटिक्स, 1920-1934. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृष्ठ संख्या: 164-169.
6. देसाई, ए. आर. (1979). भारत में किसान संघर्ष. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस। पृ. 19-23.
7. देसाई, ए. आर. (1979). सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनेलिज्म. बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन। पृष्ठ संख्या: 174-179.
8. सरकार, एस. (1983). मॉडर्न इंडिया: 1885-1947. नई दिल्ली: मैकमिलन। पृष्ठ संख्या: 198-203.
9. चन्द्र, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य; पनिक्कर, के. एन.; एवं महाजन, सुचेता। (1989). इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस (1857-1947). नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स। (पृ. 161-165, 184-189, 279-281).

भारतीय अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव

डॉ. सर्वेश कुमार सिंह*

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र की श्रम शक्ति, उपभोक्ता आधार तथा मानव संसाधन का प्रमुख स्रोत होती है। यदि पूंजी, प्रौद्योगिकी, प्राकृतिक संसाधन और आधारभूत संरचना पर्याप्त हों, तो जनसंख्या आर्थिक विकास में सहायक बनती है; किंतु संसाधनों की कमी की स्थिति में वही जनसंख्या विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न कर सकती है। भारत, जो विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों में अग्रणी है और जिसकी वैश्विक जनसंख्या में हिस्सेदारी लगभग 17.7 प्रतिशत है, तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण रोजगार, संसाधन प्रबंधन और समावेशी विकास जैसी अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारत की जनसंख्या और सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के बीच सकारात्मक एवं सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण संबंध विद्यमान है। इसके बावजूद विशाल जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति आय, मानव विकास सूचकांक (HDI) तथा जीवन स्तर अपेक्षाकृत निम्न बना हुआ है। जनसंख्या विस्फोट के परिणामस्वरूप बेरोजगारी, खाद्य सुरक्षा, आवास, स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव, सामाजिक असुरक्षा और पर्यावरणीय क्षरण जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं। अतः सतत एवं समावेशी आर्थिक विकास के लिए जनसंख्या वृद्धि का संतुलन, मानव संसाधनों का प्रभावी विकास तथा रोजगारोन्मुखी नीतियों का क्रियान्वयन आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन में अर्थव्यवस्था पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव का द्वितीयक सामग्री के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द: जनसंख्या, आर्थिक विकास, सकल घरेलू उत्पाद, मानव विकास सूचकांक, जनसंख्या विस्फोट।

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र की सबसे महत्वपूर्ण मानव पूंजी होती है। यदि जनसंख्या शिक्षित, स्वस्थ, कुशल एवं उत्पादक हो तो वह आर्थिक विकास का सबसे बड़ा आधार बनती है, जबकि अनियोजित, तीव्र एवं असंतुलित जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के मार्ग में गंभीर बाधा उत्पन्न करती है। भारत विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन चुका है। संयुक्त राष्ट्र की World Population Prospects 2024 के अनुसार भारत की जनसंख्या वर्ष 2025 में लगभग 1.46 अरब (146 करोड़) तक पहुँच चुकी है। इतनी विशाल जनसंख्या भारत के लिए एक ओर विशाल श्रमशक्ति, उपभोक्ता बाजार और नवाचार का अवसर प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण तथा आधारभूत संरचना पर अत्यधिक दबाव भी उत्पन्न करती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था वर्तमान में विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था (Nominal GDP, IMF 2025) बन चुकी है तथा सरकार ने विकसित भारत (Viksit Bharat 2047) के लक्ष्य के साथ आर्थिक विकास की नई दिशा निर्धारित की है। इसके बावजूद प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी, आय असमानता तथा क्षेत्रीय विषमताएँ अभी भी प्रमुख चुनौतियाँ बनी हुई हैं। अतः यह समझना आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि भारतीय अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित करती है तथा इसके समाधान क्या हो सकते हैं।

भारत विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों में अग्रणी है। वर्तमान संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के अनुसार भारत विश्व की लगभग 17.8% जनसंख्या का निवास स्थान है। दूसरे शब्दों में, विश्व का लगभग प्रत्येक छठा व्यक्ति भारत में रहता है। वर्ष 2023 में भारत ने जनसंख्या के दृष्टिकोण से चीन को पीछे छोड़ दिया और वर्तमान में विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है। भारत की जनसंख्या संरचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका युवा स्वरूप है। देश की लगभग आधी आबादी 30 वर्ष से कम आयु की है तथा कार्यशील आयु वर्ग (15–64 वर्ष) का अनुपात निरंतर बढ़ा है। यही कारण है कि भारत को विश्व का सबसे युवा और संभावनाशील मानव संसाधन संपन्न राष्ट्र माना जाता है।

आर्थिक दृष्टि से जनसंख्या को विकास का साधन भी माना जाता है और लक्ष्य भी। यदि जनसंख्या शिक्षित, स्वस्थ, कुशल तथा उत्पादक हो तो वह किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी पूँजी सिद्ध होती है; किन्तु जब जनसंख्या की वृद्धि उपलब्ध संसाधनों, रोजगार के अवसरों तथा आधारभूत सुविधाओं की वृद्धि से अधिक हो जाती है, तब वही जनसंख्या आर्थिक और सामाजिक विकास पर दबाव उत्पन्न करती है। भारत में लंबे समय तक तीव्र जनसंख्या वृद्धि ने नियोजित विकास की गति को प्रभावित किया है। यद्यपि हाल के दशकों में जनसंख्या वृद्धि दर में उल्लेखनीय कमी आई है, फिर भी विशाल जनसंख्या के कारण रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास तथा आधारभूत संरचना पर निरंतर दबाव बना हुआ है।

भारत में जनसंख्या का वितरण अत्यंत असमान है। उत्तर प्रदेश देश का सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है, जबकि सिक्किम और लक्षद्वीप जनसंख्या की दृष्टि से सबसे छोटे राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों में शामिल हैं। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा मध्य प्रदेश जैसे बड़े राज्यों में देश की कुल जनसंख्या का बड़ा भाग निवास करता है।

* एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पं. दी.द.उ. राजकीय महिला महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी

इसके विपरीत, क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य राजस्थान होने के बावजूद उसकी जनसंख्या का अनुपात अपेक्षाकृत कम है। यह असमान वितरण क्षेत्रीय विकास, संसाधनों के उपयोग तथा सार्वजनिक सेवाओं के प्रबंधन को प्रभावित करता है।

पिछले दो दशकों में भारत ने आर्थिक विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में निरंतर वृद्धि के कारण भारत आज विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में सम्मिलित है तथा क्रय-शक्ति समता (PPP) के आधार पर विश्व की अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं में स्थान रखता है। इसके बावजूद विशाल जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की तुलना में अभी भी अपेक्षाकृत कम है। इसी प्रकार, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा जीवन स्तर जैसे मानकों पर आधारित मानव विकास सूचकांक (HDI) में भी भारत को अभी पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आर्थिक विकास के लाभों का समान वितरण अभी तक सुनिश्चित नहीं हो सका है।

जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव केवल आर्थिक संकेतकों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण रोजगार के अवसरों पर दबाव बढ़ता है, बेरोजगारी एवं अल्परोज़गारी की समस्या गंभीर होती है, खाद्य सुरक्षा की चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं तथा प्रति व्यक्ति संसाधनों की उपलब्धता में कमी आती है। इसके अतिरिक्त, पूँजी निर्माण की गति प्रभावित होती है क्योंकि राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग वर्तमान उपभोग आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यय हो जाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पेयजल, परिवहन तथा आवास जैसी सार्वजनिक सेवाओं पर भी अत्यधिक दबाव पड़ता है। परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता, आर्थिक असुरक्षा तथा पर्यावरणीय समस्याओं में वृद्धि होती है।

भारत में जनसंख्या परिवर्तन ने आर्थिक नियोजन एवं विकास की दिशा को भी प्रभावित किया है। यद्यपि देश प्राकृतिक संसाधनों तथा विशाल मानव संसाधन से समृद्ध है, फिर भी इन संसाधनों का समुचित और उत्पादक उपयोग सुनिश्चित करना आज भी एक बड़ी चुनौती बना हुआ है। अनेक क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव, ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं की कमी, कुपोषण, शहरी झुग्गी-बस्तियों का विस्तार तथा पर्यावरणीय दबाव जैसी समस्याएँ इस चुनौती को और अधिक जटिल बनाती हैं। इसलिए केवल जनसंख्या नियंत्रण पर्याप्त नहीं है, बल्कि मानव संसाधन के विकास, कौशल उन्नयन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सुलभ स्वास्थ्य सेवाओं, रोजगार सृजन तथा सतत विकास पर समान रूप से बल देना आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि की सीमा केवल जनसंख्या के आकार या घनत्व पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि जनसंख्या और सतत संसाधन के अनुपात पर भी निर्भर करती है। संपूर्ण जनसंख्या के बीच हमारे प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन और वितरण भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जनसंख्या वृद्धि की समस्या आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण बाधाएँ उत्पन्न करती है। अनुमानों के अनुसार, जनसंख्या वृद्धि का कृषि के लिए वैश्विक भूमि उपयोग पैटर्न, वन क्षेत्र की मात्रा और विभिन्न प्रकार के जल निकायों की निकटता पर प्रभाव पड़ता है। मानव जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण भूमि, जल, वन और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं जैसे हमारे प्राकृतिक संसाधन अत्यधिक दबाव में हैं।

जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव:

निवेश की आवश्यकता की समस्या:

भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के समक्ष एक गंभीर चुनौती है। यह सर्वविदित है कि भारत की जनसंख्या अनेक विकासशील देशों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक गति से बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में प्रति व्यक्ति आय में अपेक्षित वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए निवेश की मात्रा भी अधिक करनी पड़ती है। यद्यपि पिछले वर्षों में भारत के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) तथा प्रति व्यक्ति आय दोनों में वृद्धि हुई है, फिर भी जनसंख्या में निरंतर वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि अपेक्षाकृत धीमी बनी हुई है। इसका प्रतिकूल प्रभाव आर्थिक विकास की गति पर पड़ता है। यदि जनसंख्या लगभग 1.15 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही हो तथा पूंजी-उत्पादन अनुपात 4:1 हो, तो केवल वर्तमान आर्थिक विकास दर को बनाए रखने के लिए भी लगभग 4.6 प्रतिशत निवेश आवश्यक हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि निवेश की आवश्यकता को निरंतर बढ़ाती है।

प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव:

जनसंख्या वृद्धि का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है। किसी देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि तभी सार्थक मानी जाती है, जब उसका लाभ प्रत्येक नागरिक तक पहुँचे। भारत विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में शामिल है, किंतु विशाल जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति आय अपेक्षाकृत निम्न बनी हुई है। पिछले दो दशकों में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय दोनों में वृद्धि हुई है, किंतु जनसंख्या वृद्धि के कारण यह वृद्धि अपेक्षित गति से नहीं हो सकी। परिणामस्वरूप आम नागरिक के जीवन स्तर में सुधार की प्रक्रिया धीमी बनी रहती है।

पूंजी निर्माण की समस्या:

जनसंख्या वृद्धि पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है। उच्च जन्म दर और आश्रित जनसंख्या के अधिक अनुपात के कारण परिवारों की आय का बड़ा भाग उपभोग पर व्यय हो जाता है तथा बचत की क्षमता सीमित रह जाती है। भारत में बड़ी संख्या में बच्चे तथा वृद्धजन आर्थिक रूप से आश्रित हैं, जिससे उत्पादक जनसंख्या पर आर्थिक बोझ

बढ़ता है। बचत में कमी के कारण निवेश और पूंजी निर्माण की गति धीमी पड़ जाती है, जबकि आर्थिक विकास के लिए पूंजी निर्माण अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार, अत्यधिक जनसंख्या पूंजी निर्माण में एक प्रमुख बाधा सिद्ध होती है।

खाद्य उपलब्धता पर प्रभाव:

तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्यान्न की मांग निरंतर बढ़ रही है, जबकि कृषि योग्य भूमि सीमित होती जा रही है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, सड़क निर्माण तथा अन्य अवसंरचनात्मक परियोजनाओं के कारण कृषि भूमि का बड़ा भाग गैर-कृषि कार्यों में परिवर्तित हो रहा है। परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन और मांग के बीच असंतुलन उत्पन्न होता है। इससे खाद्य पदार्थों की उपलब्धता प्रभावित होती है तथा कुपोषण और खाद्य असुरक्षा जैसी समस्याएँ बढ़ने लगती हैं।

बेरोजगारी की समस्या:

भारत में बेरोजगारी की समस्या का एक प्रमुख कारण तीव्र जनसंख्या वृद्धि है। जनसंख्या बढ़ने से श्रमशक्ति में निरंतर वृद्धि होती है, किंतु रोजगार के अवसर उसी अनुपात में विकसित नहीं हो पाते। सीमित पूंजी और औद्योगिक विकास के कारण सभी कामकाजी व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में खुली बेरोजगारी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रच्छन्न (छिपी हुई) बेरोजगारी जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। यह स्थिति आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक स्थिरता के लिए भी चुनौती बन जाती है।

निम्न जीवन स्तर:

अत्यधिक जनसंख्या का प्रभाव नागरिकों के जीवन स्तर पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, परिवहन, स्वच्छता तथा अन्य सार्वजनिक सुविधाओं पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। संसाधनों की सीमित उपलब्धता के कारण सभी नागरिकों को गुणवत्तापूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पातीं। फलस्वरूप जीवन स्तर निम्न बना रहता है तथा सामाजिक असमानताएँ बढ़ती हैं।

आश्रित जनसंख्या का बढ़ता बोझ:

जनसंख्या वृद्धि के कारण आश्रित आयु वर्ग की संख्या में भी वृद्धि होती है। बच्चों, वृद्धजनों तथा बेरोजगार व्यक्तियों का भरण-पोषण कार्यशील जनसंख्या पर निर्भर रहता है। इससे परिवारों की बचत क्षमता घटती है और निवेश के लिए उपलब्ध संसाधन कम हो जाते हैं। उच्च निर्भरता अनुपात आर्थिक प्रगति की गति को धीमा कर देता है तथा पूंजी निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

गरीबी की समस्या:

जनसंख्या वृद्धि और गरीबी का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। जब परिवार का आकार बड़ा होता है, तब आय का अधिकांश भाग दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में व्यय हो जाता है। परिणामस्वरूप बचत और निवेश की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। सीमित संसाधनों के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण पर पर्याप्त व्यय नहीं हो पाता, जिससे मानव संसाधन का विकास बाधित होता है। इस प्रकार गरीबी और जनसंख्या वृद्धि एक-दूसरे को निरंतर बढ़ावा देती हैं तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

सामाजिक समस्याएँ:

जनसंख्या वृद्धि अनेक सामाजिक समस्याओं को भी जन्म देती है। रोजगार और बेहतर जीवन की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन होता है, जिससे झुग्गी-झोपड़ियों का विस्तार होता है। इन क्षेत्रों में स्वच्छता, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मूलभूत सुविधाओं का अभाव बना रहता है। बेरोजगारी, गरीबी और सामाजिक असंतोष के कारण अपराध, नशाखोरी, बाल श्रम, भिक्षावृत्ति तथा अन्य सामाजिक विकृतियों में वृद्धि होने की संभावना रहती है।

भूमि पर बढ़ता दबाव:

जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। कृषि भूमि का निरंतर विभाजन और विखंडन खेती की उत्पादकता को प्रभावित करता है। साथ ही, शहरीकरण और औद्योगिक विस्तार के कारण कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल लगातार घट रहा है। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, प्रदूषण तथा पर्यावरणीय असंतुलन भी जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम हैं। इन परिस्थितियों का प्रतिकूल प्रभाव देश के दीर्घकालीन आर्थिक विकास और पर्यावरणीय संतुलन दोनों पर पड़ता है।

भारत में जनसंख्या नियंत्रण के उपाय:

भारत विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों में से एक है। देश की जनसंख्या निरंतर तीव्र गति से बढ़ रही है। यदि जनसंख्या वृद्धि दर 1 प्रतिशत हो, तो प्रतिवर्ष लगभग 1 करोड़ लोगों की वृद्धि होती है। वर्तमान में यह दर 1 प्रतिशत से अधिक होने के कारण हर वर्ष 1 करोड़ से भी अधिक लोग देश की जनसंख्या में जुड़ रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या का सीधा प्रभाव देश के प्राकृतिक संसाधनों, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास तथा पर्यावरण पर पड़ता है। इसलिए समाज के समग्र कल्याण और सतत विकास के लिए प्रभावी जनसंख्या नियंत्रण उपायों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण उच्च जन्म दर है। अतः ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए, जो जन्म दर

को नियंत्रित करने में सहायक हों। जनसंख्या नियंत्रण के उपायों को मुख्यतः सामाजिक और आर्थिक उपायों में विभाजित किया जा सकता है।

सामाजिक उपाय:

- **विलंबित विवाह:** जनसंख्या नियंत्रण का एक प्रभावी उपाय विवाह की आयु में वृद्धि है। सरकार ने पुरुषों और महिलाओं के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 21 वर्ष निर्धारित की है। यदि विवाह अपेक्षाकृत अधिक आयु, जैसे 25 से 30 वर्ष के बीच हो, तो महिलाओं की प्रजनन अवधि कम हो जाती है। परिणामस्वरूप बच्चों की संख्या सीमित रहती है और जन्म दर में कमी आती है। साथ ही, अधिक आयु में विवाह होने से व्यक्ति शिक्षा, रोजगार और आर्थिक रूप से भी अधिक सक्षम हो जाता है।
- **महिला सशक्तिकरण:** महिला सशक्तिकरण जनसंख्या नियंत्रण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। अनेक विकासशील देशों में आज भी महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार और निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। पुत्र प्राप्ति की इच्छा के कारण कई परिवार अधिक संतान उत्पन्न करते हैं। यदि महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा परिवार संबंधी निर्णयों में समान अधिकार दिए जाएँ, तो वे परिवार नियोजन के प्रति अधिक जागरूक होंगी और छोटे परिवार की अवधारणा को अपनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगी।
- **शिक्षा का प्रसार:** शिक्षा किसी भी समाज के विकास का आधार है। एक शिक्षित व्यक्ति जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभावों को बेहतर ढंग से समझ सकता है। विशेष रूप से महिला शिक्षा जनसंख्या नियंत्रण का अत्यंत प्रभावी साधन है। शिक्षित दंपति छोटे परिवार के लाभों को समझते हैं तथा बच्चों की संख्या सीमित रखने के प्रति अधिक जागरूक रहते हैं। शिक्षा के अभाव में महिला सशक्तिकरण तथा जनसंख्या नियंत्रण से जुड़े अधिकांश प्रयास अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर पाते।
- **परिवार नियोजन:** परिवार नियोजन का उद्देश्य परिवार के आकार को स्वैच्छिक एवं योजनाबद्ध ढंग से सीमित रखना है। इसके लिए गर्भनिरोधक साधनों का उपयोग, उचित स्वास्थ्य सेवाएँ तथा जन-जागरूकता अत्यंत आवश्यक हैं। सरकार को सस्ती और गुणवत्तापूर्ण परिवार नियोजन सेवाएँ उपलब्ध कराने के साथ-साथ लोगों को गर्भनिरोधक उपाय अपनाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इससे जन्म दर में कमी लाई जा सकती है।

आर्थिक उपाय:

- **रोजगार के अवसरों का सृजन:** रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध होने से लोगों की आय में वृद्धि होती है और उनका आर्थिक स्तर सुधरता है। आर्थिक रूप से सक्षम परिवार सामान्यतः सीमित संतान को प्राथमिकता देते हैं ताकि वे बच्चों को बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन-स्तर प्रदान कर सकें। इसलिए सरकार को अधिक से अधिक रोजगार सृजित करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- **कृषि एवं उद्योग का विकास:** कृषि और उद्योग किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार होते हैं। इन क्षेत्रों के समुचित विकास से बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं। आय में वृद्धि होने पर लोगों का जीवन स्तर सुधरता है और वे छोटे परिवार की अवधारणा को सहज रूप से स्वीकार करते हैं। इसलिए कृषि और औद्योगिक विकास जनसंख्या नियंत्रण में अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- **जीवन स्तर में सुधार:** जब लोगों का जीवन स्तर ऊँचा होता है, तो वे अपने परिवार को सीमित रखना अधिक उपयुक्त समझते हैं। छोटे परिवार के माध्यम से वे अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ और जीवन की आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करा सकते हैं। अतः सरकार को ऐसी नीतियाँ अपनानी चाहिए जो नागरिकों के जीवन स्तर को निरंतर बेहतर बनाएँ।
- **प्रोत्साहन आधारित नीतियाँ:** सरकार जनसंख्या नियंत्रण को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन प्रदान कर सकती है। उदाहरण के लिए, दो या उससे कम बच्चों वाले परिवारों को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, बीमा अथवा आर्थिक सहायता जैसी सुविधाएँ दी जा सकती हैं। इसी प्रकार, परिवार नियोजन अपनाने वाले दंपतियों को विशेष लाभ देकर छोटे परिवार के आदर्श को समाज में प्रोत्साहित किया जा सकता है। ऐसी प्रोत्साहन आधारित नीतियाँ जनसंख्या नियंत्रण के प्रयासों को अधिक प्रभावी बना सकती हैं।

निष्कर्ष:

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के विकास का आधारभूत तत्व है। यह एक ओर श्रम शक्ति, उत्पादन तथा आर्थिक गतिविधियों का प्रमुख स्रोत है, तो दूसरी ओर यदि इसकी वृद्धि उपलब्ध संसाधनों की तुलना में अधिक हो जाए, तो यही जनसंख्या विकास में बाधा बन जाती है। अतः जनसंख्या आर्थिक विकास का साधन भी है और लक्ष्य भी। जब जनसंख्या संसाधनों के अनुरूप होती है, तब वह राष्ट्र की संपत्ति कहलाती है, किंतु जब उसकी संख्या इष्टतम सीमा से अधिक हो जाती है, तब वह आर्थिक एवं सामाजिक दायित्व का रूप धारण कर लेती है। जनसंख्या श्रम शक्ति का प्रमुख स्रोत है। यदि उत्पादन के लिए आवश्यक पूँजी, प्राकृतिक संसाधन, तकनीक तथा आधारभूत संरचना पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों, तो अधिक जनसंख्या आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होती है। इसके विपरीत, जब संसाधनों की उपलब्धता सीमित हो और

जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती रहे, तब बेरोजगारी, गरीबी तथा संसाधनों पर अत्यधिक दबाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। यही स्थिति अधिकांश विकासशील देशों, विशेषकर भारत में देखने को मिलती है।

भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में सम्मिलित है। क्रय शक्ति समता (PPP) के आधार पर भारत विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। पिछले दो दशकों में देश की सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि और सकल घरेलू उत्पाद के बीच सकारात्मक सहसंबंध पाया जाता है। अर्थात् जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ कुल उत्पादन तथा GDP में भी वृद्धि हुई है। इसी प्रकार, जनसंख्या वृद्धि का मुद्रास्फीति पर प्रत्यक्ष और निर्णायक प्रभाव नहीं पाया गया है, क्योंकि मुद्रास्फीति अनेक अन्य आर्थिक कारकों, जैसे मौद्रिक नीति, आपूर्ति की स्थिति तथा वैश्विक आर्थिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होती है। जनसंख्या विस्फोट का प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी अत्यंत व्यापक है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी, गरीबी, खाद्यान्न की कमी, आवास संकट, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं पर बढ़ता दबाव, पूँजी निर्माण में कमी तथा आधारभूत सुविधाओं की अपर्याप्तता जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त भूमि पर अत्यधिक दबाव, कृषि जोतों का विखंडन, शहरीकरण, झुग्गी-बस्तियों का विस्तार, पर्यावरण प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन भी जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम हैं। इन परिस्थितियों के कारण सामाजिक असुरक्षा, आर्थिक असमानता, अपराध तथा जीवन-स्तर में गिरावट जैसी समस्याएँ भी बढ़ती हैं।

स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज के प्रत्येक आयाम को प्रभावित करती है। इसलिए सतत एवं समावेशी विकास के लिए जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण आवश्यक है। इस दिशा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, विशेषकर महिला शिक्षा का विस्तार, जनसंख्या संबंधी जागरूकता, परिवार नियोजन कार्यक्रमों का प्रभावी क्रियान्वयन, महिलाओं का सशक्तिकरण, स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण, रोजगार के अवसरों का सृजन तथा आर्थिक विकास की समावेशी नीतियाँ महत्वपूर्ण उपाय हैं। इन सामाजिक एवं आर्थिक उपायों के माध्यम से जनसंख्या और संसाधनों के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है तथा देश के समग्र एवं सतत विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ:

- अग्रवाल, ए. एन. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था. न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स।
- दत्त, आर., एवं सुंदरम, के. पी. एम. (2022). भारतीय अर्थव्यवस्था. एस. चंद एंड कम्पनी लिमिटेड।
- मिश्र, एस. के., एवं पुरी, वी. के. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था. हिमालय पब्लिशिंग हाउस।
- भारत सरकार, वित्त मंत्रालय। (2024). आर्थिक सर्वेक्षण 2023–24. भारत सरकार।
- भारत सरकार। (2011). भारत की जनगणना 2011. भारत के महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त।
- नीति आयोग. (2023). भारत @2047: विकास संबंधी रिपोर्टें।
- भारतीय रिज़र्व बैंक. (2024). वार्षिक प्रतिवेदन 2023–24।
- विश्व बैंक. (2024). विश्व विकास संकेतक (World Development Indicators): भारत।
- संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (UNFPA). (2023). विश्व जनसंख्या की स्थिति (State of World Population Report)।

मिश्रित शिक्षण प्रणाली : परंपरागत और डिजिटल शिक्षण का आदर्श मिश्रण

प्रियंका रानी*
डॉ. देवेंद्र कुमार यादव**

मिश्रित शिक्षण प्रणाली या ब्लेंडेड शिक्षा प्रणाली एक औपचारिक शिक्षण कार्यक्रम है जिसके तहत विद्यार्थी पाठ्यक्रम का कुछ भाग क्लास में एवं शेष भाग डिजिटल एवं ऑनलाइन संसाधनों का उपयोग कर पूर्ण करते है | मिश्रित शिक्षण प्रणाली में विद्यार्थी अपने सुविधा के अनुकूल समय, स्थान, विधि तथा माध्यम का चुनाव करते है | मिश्रित शिक्षा प्रणाली में विद्यालय के आमने-सामने की परंपरागत शिक्षण प्राणली के साथ -साथ आइ॰ सी॰ टी॰ का उपयोग किया जाता है | राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 गुणवत्तापूर्ण लचीला शिक्षण पद्धति को अपना रही है जिसमे शिक्षा के विभिन्न माध्यम तक सब की पहुंच हो और सीखने के लिए तकनीकी -सक्षम आधारित शिक्षा के महत्व को मान्यता देती है | आज के दौर में जब तकनीक के क्षेत्र में तेजी से परिवर्तन हो रहा है ऐसे में मिश्रित शिक्षण प्रणाली शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन है जी क्लासरूम शिक्षण के साथ -साथ आधुनिक आई॰सी॰टी॰ संसाधनों के उपयोग से एक ऐसे आदर्श रूप को प्रस्तुत करती है जो आज की आवश्यकता को पूरा भी करता है | एन॰ई॰पी. 2020 में जिन प्रमुख पहलुओं पर बल दिया गया है उसमे मिश्रित अधिगम पद्धति को अपनाना भी शामिल है |

शब्द कुंजी - मिश्रित शिक्षण प्राणली, परंपरागत शिक्षण प्राणली, मिश्रित शिक्षण प्रणाली के रूप

प्रस्तावना

शिक्षण प्रणाली लगातार परिवर्तन के दौर से गुजर रही है | कोविड 19 के बाद सीखने एवं सीखा ने की प्रक्रिया में अनेक परिवर्तन आया है | शिक्षक अपने विद्यार्थियों को परंपरागत प्राणली के साथ -साथ सीखने के नवीन माध्यम को विकसित करने का प्रयास कर रहा है | सीखने की प्रक्रिया में जो बदलाव हो रहा है , उसमें परंपरागत क्लासरूम शिक्षण प्रणाली के साथ ऑनलाइन माध्यम भी शामिल है जिसे ब्लेंडेड लर्निंग या मिश्रित शिक्षा प्रणाली के रूप में जाना जाता है | मिश्रित शिक्षा प्रणाली व्यावहारिक एवं अनुभव आधारित शिक्षण की संभावना को विकसित करता है | इस माध्यम से विद्यार्थी अपने क्षमता से सीख सकते है | ऑनलाइन माध्यम से शिक्षक को विशेष समूह को सीखाने के लिये एक निर्देशित दृस्टिकोण विकसित करने में सहायता मिलती है जिससे विद्यार्थियों में बेहतर समझ विकसित किया जा सकता है | वर्तमान शिक्षा प्रणाली विस्तार एवं गुणवत्तापूर्ण एक समान शैक्षिक अवसरों के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नए अवसर तलाशने की कोशिश कर रही है | मिश्रित शिक्षण शब्द का प्रयोग उस तरीके का वर्णन करने के लिए किया जा रहा है जिसमे ऑनलाइन शिक्षण को परंपरागत क्लासरूम शिक्षण और स्वतंत्र अध्ययन के साथ मिलाकर एक नई हाइब्रिड शिक्षण पद्धति बनाई जाती है |

अध्ययन का उद्देश्य - मिश्रित शिक्षण प्रणाली की अवधारण , विशेषता , महत्व , अवश्यकता एवं चुनौतियों का पता लगाना |

शोध प्रविधि - यह अध्यन पुस्तक , शैक्षणिक रिपोर्ट एवं शोध आलेखों से प्राप्त द्वितीय स्रोतों के आधार पर किया गया है |

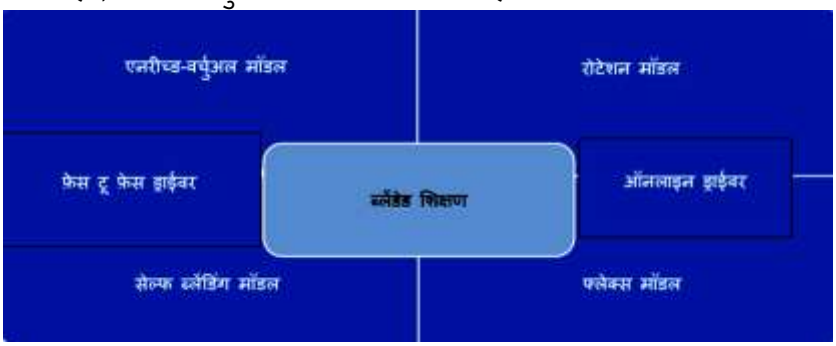
* शोध छात्रा, शिक्षक–शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज
** सहायक आचार्य, शिक्षक–शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

मिश्रित अधिगम -

मिश्रित अधिगम शिक्षण प्रणाली का एक आधुनिक अवधारणा है जिसमे शामिल है - शिक्षण -अधिगम प्रक्रिया जिसमे आई सी टी द्वारा समर्थित शिक्षण और अधिगम दोनों का उपयोग करना होता है | प्रत्यक्ष निर्देशन , अप्रत्यक्ष निर्देशन , सहयोगी शिक्षण , व्यक्तिगत कम्प्यूटर - सहायक शिक्षण प्रणाली मिश्रित शिक्षण प्रणाली में शामिल होता है | मिश्रित शिक्षण की अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि सीखना सिर्फ एक बार होने वाली घटना नहीं है -यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है | ब्लेंडिंग (मिश्रित) अनेक तरह के फायदे देती है जो किसी एक शिक्षण माध्यम से अकेले नहीं प्राप्त हो सकता (सिंह, 2003)| मिश्रित शिक्षण को एक ऐसे शिक्षण प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए जो क्लासरूम कि गुणवत्ता और सामाजिक मेलजोल के अवसर को ऑनलाइन एवं तकनीकी के माध्यम से बेहतर सक्रिय रूप से सीखने कि संभवनाओं के साथ जोड़ता है |(ड्रिबन, हर्टमैन और मस्कल,2004) | मिश्रित शिक्षण इंटरनेट और डिजिटल मीडिया को क्लासरूम के परंपरागत शिक्षण प्राणली के साथ मिलकर बनती है, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी कि शारीरिक उपस्थिती आवश्यक होती है (नॉर्म फ्रीसेन, 2012)| मिश्रित शैली लर्निंग सक्रिय, व्यस्त ऑनलाइन लर्निंग के साथ सक्रिय,व्यस्त शिक्षण का ऑफलाइन संयोजन है ताकि विद्यार्थी को सीखने के समय, गति, स्थान और पथ पर अधिक नियंत्रण हो सके (टकर ,2022)

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि मिश्रित शिक्षण में परंपरागत शिक्षण एवं शिक्षण तकनीकी ,इन दोनों का मिश्रण होता है |

मिश्रित शिक्षण का मॉडल -आधुनिक शोध एवं शिक्षा शास्त्रियों द्वारा ब्लेंडेड लर्निंग के अनेक अलग -अलग मॉडल बताया गया है , जिनमें से कुछ रूप का विवरण निम्न है -



1. रोटेशन मॉडल- इसमें ऑनलाइन के साथ -साथ सीखने के लिए आमने -सामने के माध्यम को एक साथ एक चक्र के रूप में शामिल किया जाता है | इस के अनेक उप मॉडल है : स्टेशन रोटेशन , लैब रोटेशन और इंडिविजुअल रोटेशन |

2. **ऑनलाइन ड्राईवर** - इसमें कोर्स मुख्य तौर पर ऑनलाइन होता है | विद्यार्थी कभी- कभी अपनी प्रगति को समझने या परीक्षा के लिए आमने सामने मिल सकते है |

३. फ्लेक्स मॉडल - इसमे ऑनलाइन और आमने सामने की पढ़ाई का मिश्रण होता है | इस में विद्यार्थी क्लासरूम में तो जाते है, लेकिन अध्यन की सामग्री कम्पयूटर के माध्यम से प्राप्त करते हैं | इसमें सीखने का समय और गति लचीला होता है | विद्यार्थी स्वयं तय करता है कि वे ऑनलाइन कार्य को कब और कैसे पूरा करेंगे | इसमें विद्यार्थी अपनी पढ़ाई और प्रगति के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है |

4. सेल्फ - ब्लेंडिंग मॉडल- इस के अंतर्गत विद्यार्थी अपनी नियमित विद्यालय के कोर्स के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से अपनी रुचि के अनुसार अलग -अलग ऑनलाइन कोर्स चुनते हैं, लेकिन वे ऐसी जगह पर ऐसा करते हैं जहां देख रेख करने वाले शिक्षक और दूसरे विद्यार्थी भी साथ में उपलब्ध होते हैं |

5. फ़ेस टू फ़ेस ड्राईवर- शिक्षक क्लास में पढ़ाते है और पाठ्य को बेहतर बनाने के लिए डिजिटल संसाधनों का उपयोग करते है |

6. एनरिच्ड-वर्चुअल मॉडल - इस के अंतर्गत विद्यार्थी कोर्स का अधिकांश हिस्सा ऑनलाइन पढ़ते है | वर्चुअल अनुभवों को तय समय पर विद्यार्थी विद्यालय जाकर आमने -सामने कि पढ़ाई भी करते है | इसमें विद्यार्थी को अपने अनुकूल पढ़ने और सीखने कि पूरी स्वतन्त्रता होत है और शिक्षक का मार्गदर्शन भी प्राप्त होता रहता है |

ब्लेंडेड लर्निंग के उपरोक्त मॉडल में दो अहम तथ्य एक जैसी हैं | यह विद्यार्थियों को सही तरीके से जानकारी को समझने और सीखने का मौका होता हैं ,इस में शिक्षक को वह आधार तैयार करना होता है जिस पर विद्यार्थी सीखते हैं | शिक्षक विषय और क्रिटिकल थिंकिंग स्किल्स देते हैं और विद्यार्थी उन्हे ऐसे तारीकों से इस्तेमाल करते हैं जिससे उन्हे जानकारी याद रखने में मदद मिले | इस तरह, विद्यार्थी अपनी सीखने की गति को बादल सकते हैं, आवश्यकता के अनुसार कम या ज्यादा रेसोर्स का उपयोग कर सकते हैं, और ऐसे टास्क चुन सकते हैं जो उनके सीखने के तरीके और पहले से मौजूद जानकारी के स्तर के हिस्साब से सबसे बेहतर हों |

मिश्रित शिक्षण की विशेषताएं -

(1) विद्यार्थियों के समक्ष दो माध्यम का विकल्प |
(2) शिक्षक दोनों माध्यम में पारंगत होते है |
(3) विद्यार्थियों को आमने -सामने के साथ साथ वर्चुअल माध्यम से भी इंटेरेक्ट करते है |
(4) विद्यार्थी नई तकनीक के उपयोग करने में सक्षम होता है |
(5) विद्यार्थी का सर्वगीण विकास का लक्ष्य होता है |
(6) विद्यार्थी को पाठ्यक्रम सामग्री का व्यापक उपलब्धता और नई दृस्टिकोन प्राप्त होताहै |
(7) सीखने में विद्यार्थियों की ज्यादा भागीदारी होती है |
(8) शिक्षक और विद्यार्थी के बीच बेहतर बातचीत
(9) समय का प्रबंधन और लचीलापन
(10)दूर से भी एक साथ काम करने का अवसर

मिश्रित शिक्षण की आवश्यक तत्व -

मिश्रित शिक्षण को प्रभावी बनाना आसान कार्य नहीं है | इसमे शिक्षण अधिगम के सभी तत्वो में कुछ मूलभूत तैयारियों की आवश्यकता होती है जैसे - शिक्षक , विद्यार्थी ,बुनियादी ढांचा और सामग्री डिजाइनिंग | मिश्रित शिक्षण को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए निम्नलिखित बुनियादी आवश्यकता है |

प्रशिक्षित शिक्षक - शिक्षक मिश्रित शिक्षण का एक प्रमुख केंद्र है | शिक्षक को दोनों माध्यम में पारंगत होना चाहिए| उन्हे डिजिटल सामग्री विकसित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए| उन्हे आइ॰सी॰टी॰ की अच्छी जानकारी हो | शिक्षक, शिक्षण केन्द्रित वैबसाइट, नेटवर्किंग एवं साइट का उपयोग करने में सक्षम हो |

वैज्ञानिक दृस्टिकोण वाले शिक्षक - यह बहुत आवश्यक है कि शिक्षकों का दृस्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए | उनके पास अवलोकन कौशल, समस्या को सुलझाने का कौशल होना चाहिए |

कम्प्यूटर लैब , इंटरनेट कनैक्शन, विडियो चैटिंग जैसी सुविधाओं कि उपलब्धता- मिश्रित शिक्षण बहुत सीमा तक बुनियादी ढांचे पर निर्भर करता है | विद्यालय में एक बेहतर कम्पुटर लैब, वाई- फ़ाई, इंटरनेट कि सुविधा होना आवश्यक है |

विद्यार्थियों के पास अपनी कम्प्युटर एवं इंटरनेट कि सुविधा - विद्यालय के अतिरिक्त विद्यार्थियों के पास आइ॰ सी॰ टी॰ कि सुविधा अपने घर पर उपलब्ध होना चाहिए |

सफल मिश्रित शिक्षण के लिए आवश्यक मूलभूत योग्यता, बुनियादी तकनीकी संसाधनों की उबलब्धता एवं तकनीकी साक्षारता शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिए आवश्यक है |

मिश्रित शिक्षण के लाभ एवं चुनौतीयां-

प्रत्येक नवाचार के अपने लाभ एवं चुनौतीयां होती है, मिश्रित शिक्षण प्रणाली भी इससे अलग नहीं है | मिश्रित शिक्षण प्रणाली एक विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण पद्धति है जिसमें शिक्षक पर छात्र के प्रदर्शन का दबवा नहीं होता | यह सीखने में विद्यार्थियों की सहभागिता एवं भागीदारी में वृद्धि करता है | मिश्रित शिक्षण विद्यार्थियों की बेहतर परिणाम लाने में मदद करते हैं और पूरी तरह से आमने -सामने या ऑनलाइन क्लास की तुलना में ज्यादा लाभदायक होते हैं | विद्यार्थी डिजिटल शिक्षण और आमने-सामने बातचीत के माध्यम का उपयोग करके, बिना शिक्षक की मदद के नए सिद्धांतों पर स्वयं काम कर सकते हैं | शिक्षक अब अपनी शिक्षण को बेहतर बना सकते हैं ताकि सभी विद्यार्थी सीखने के लिए अपनी पूरी क्षमता का उपयोग कर सकें, ठीक वैसे ही जैसे वे परंपरागत क्लास रूम में करते थे | यह विद्यार्थियों को एक ही समय में स्वतंत्र और मिलकर सीखने का अनुभव प्रदान करता है | मिश्रित शिक्षण प्रणाली विद्यार्थियों के सीखने के दृस्टिकोण को विकसित और विस्तृत करता है | यह कम्प्यूटर- आधारित गुणात्मक और मात्रात्मक असेसमेंट मॅडयूल का उपयोग करके पाठ्य सामग्री की बेहतर समझ विकसित करता है | यह माध्यम कम खर्चीला है तथा वैसे विद्यार्थियों की मदद करता है जिनके अंदर खास हुनर है , वे अपने हुनर और स्किलस को और आगे बढ़ा सकता है | यह व्यक्तिगत शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करवाता है और शिक्षक और विद्यार्थी के बीच के भौतिक दूरी को कम करता है |

मिश्रित शिक्षा के राह में अनेक चुनौतियाँ भी है| अगर मिश्रित शिक्षण प्रणाली की योजना ठीक से न बनाई जाए और उसे सही ढंग से न लागू किया जाए तो यह उचित परिणाम नहीं दे सकता, क्योकि यह पूर्ण रूप से तकनीकी संसाधनों या आई .सी. टी. पर निर्भर करता है | नवीन संसाधनों का सही से उपयोग के लिए विद्यार्थी और शिक्षक का आई. टी . साक्षर होना आवश्यक है साथ ही साथ इंटरनेट की सुविधा और इलेक्ट्रॉनिक्स संसाधन तक पहुँच भी जरूरी है | अर्धविकसित देशों में इनफ्रास्ट्रक्चर एवं संसाधनों की कमी इस दिशा में एक बड़ी चुनौती है |

भारतीय शिक्षा प्रणाली निरंतर परिवर्तन के दौर से गुजर रही है, और नित्य नई चुनौतियों का सामना करना पड रहा है| सभी विद्यार्थियों को मुफ़्फ़्त और अनिवार्य शिक्षा ,शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार के साथ साथ गुणवत्ता को बनाए रखना , अंतर्राष्ट्रीय मांगो के अनुकूल शिक्षा , शिक्षा में भारतीय मूल्य प्रणाली को बनाए रखना इत्यादि| मिश्रित शिक्षण प्रणाली उपरोक्त चुनौतियों का सामना करने में मददगार हो सकती है | इसके माध्यम से शैक्षिक अवसरों के क्षेत्र को व्यापक बनाया जा सकता है जिससे शिक्षा अधिक विद्यार्थियों तक पहुँच सकती है | अंतराष्ट्रीय मांगो के अनुकूल अपने ज्ञान और कौशल को संवर्धित किया जा सकता है | शिक्षकों की कमी की समस्याओं का भी यह समाधान हो सकता है क्योकि ऑनलाइन शिक्षण शिक्षक का विकल्प हो सकता है | विद्यालय में अनियमित उपस्थिती और ड्रॉप आउट की समस्या का भी हल निकाला जा सकता है तथा सभी के लिए समान अवसर की उपलब्धता होगी | मिश्रित शिक्षा आधुनिक तकनिकों एवं कौशल में विद्यार्थियों को दक्षता प्रदान करेगी जिससे वो बेरोजगारी जैसे समष्या का भी समाधान करने में सफल होंगे|

निष्कर्ष:

मिश्रित शिक्षण से सीखने एवं सीखाने के तरीके में महत्वपूर्ण परिवर्तन आने की बहुत संभावनाएं हैं| आमने-सामने और डिजिटल शिक्षण दोनों माध्यम को एकीकृत कर , मिश्रित शिक्षण एक लचीला और व्यक्तिगत अनुभव प्रदान करता है जो सीखने की विभिन्न माध्यम और गति को पूरा करता है | यह विद्यार्थियों में सक्रिय शिक्षण को बढ़वा देता है और विद्यार्थियों को उनकी सुविधा अनुसार शैक्षणिक संसाधनों

तक पहुचने की अनुमति देता है | इसके अतिरिक्त , शिक्षक व्यक्तिगत एवं विद्यार्थियों के प्रगति को जानने के लिए तकनीक का उपयोग कर सकता है | कोविड 19 के बाद से शिक्षा व्यवस्था नई तकनीकों को अपना कर सभी के लिए अच्छी शिक्षा का अवसर उपलब्ध करा कर अपने निर्धारित लक्ष्य को पाने का प्रयास कर रही है, इस दिशा में ब्लेंडेड शिक्षण एक आवश्यकता बन गई | मिश्रित शिक्षण , परंपरागत क्लासरूम शिक्षण की डिजिटल और ऑनलाइन शिक्षण तकनीकी के साथ मिलती है | यह शिक्षण प्रणाली विद्यार्थियों के लिए लचीला, रुचिकर एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए बनाया गया है | इसमें ऑफलाइन एवं ऑनलाइन दोनों माध्यम की विशेषताओं को शामिल किया गया है इस कारण नई शिक्षा नीति 2020 में विद्यालय से लेकर उच्च शिक्षा तक सीखने और पढ़ाने में इसकी उपयोगिता को देख कर "स्वयम", "दीक्षा" जैसे ऑनलाइन पोर्टल प्रारम्भ किया गया है जिसके माध्यम से मिश्रित शिक्षण प्रणाली के प्रसार एवं उपयोग पर बल दिया गया है |

संदर्भ सूची-

1. Alammary, A. (2019), Blended learning models forintroductory programming course: a systematic review. PLoS One14(9),e0221765
2. Anthony ,Elizabeth .(2019) , *"(Blended) Learning: How Traditional Best Teaching Practices Impact Blended Elementary Classrooms, Journal of Online Learning Research*, v5 n1 p25-48 ,Available online at https://eric.ed.gov/?id=EJ1208838
3. Blended Mode of Teaching and Learning: Concept Note University Grants Commission New Delhi, Available online at https://www.ugc.gov.in/pdfnews/6100340_Concept-Note-Blended-Mode-of-Teaching-and-Learning.pdf
4. Dziuban, C. Hartman, J., & Moskal , P. (2004), Blended learning, ECAR Research Bulletin. Available online at http://www.educasu.edu/ecar/
5. Friesen, Norm .(2012) Report: Defining Blended Learning , Available online at https://www.normfriesen.info/papers/Defining_Blended_Learning_NF.pdf
6. Singh, H.(2003), Building Effective Blended Learning Programs , Available online at https://asianvu.com/digital-library/elearning/blended-learning
7. Tucker, C.R. (2022), The complete Guide to Blended Learning: Activating, Agency, Differentiation, Community, and Inquiry for Students, Solution Tree

प्राचीन भारत में भूमि अनुदान और धार्मिक संस्थाएँः अभिलेखीय साक्ष्यों के आलोक में एक अध्ययन

अबनीश कुमार*

शोध सारांश

प्राचीन भारत में भूमि अनुदान की परंपरा धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग थी। शासकों द्वारा ब्राहमणों, मंदिरों, बौद्ध विहारों तथा जैन संस्थाओं को भूमि प्रदान की जाती थी, जिसका उल्लेख अनेक ताम्रपत्रों एवं अभिलेखों में मिलता है। यह व्यवस्था केवल धार्मिक पुण्य प्राप्ति का साधन नहीं थी, बल्कि राज्य की राजनीतिक वैधता स्थापित करने तथा सांस्कृतिक प्रभाव के विस्तार का माध्यम भी थी।

धार्मिक संस्थाओं को प्राप्त भूमि से कृषि उत्पादन और राजस्व की आय होती थी, जिससे वे आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनती थीं। परिणामस्वरूप मंदिर, मठ और विहार धार्मिक केंद्रों के साथ-साथ शिक्षा, संस्कृति तथा स्थानीय प्रशासन के केंद्र के रूप में भी विकसित हुए। भूमि अनुदानों ने ग्रामीण समाज में नए भू-स्वामियों और धार्मिक अभिजात वर्ग के उदय को प्रोत्साहित किया तथा सामाजिक संरचना को प्रभावित किया। यह शोध-पत्र अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर भूमि अनुदान और धार्मिक संस्थाओं के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भूमि अनुदान व्यवस्था धार्मिक आस्था, राजनीतिक हितों तथा आर्थिक संरचना के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी थी, जिसने प्राचीन भारतीय समाज के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया।

मुख्य शब्दः भूमि अनुदान, धार्मिक संस्थाएँ, मंदिर, बौद्ध विहार, जैन संस्थाएँ, ताम्रपत्र, अभिलेख।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में भूमि अनुदान अभिलेख अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत माने जाते हैं। ये अभिलेख न केवल तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था और राजस्व प्रणाली की जानकारी प्रदान करते हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन के विभिन्न आयामों को भी उजागर करते हैं। प्राचीन भारत में भूमि को संपत्ति, उत्पादन और सत्ता का प्रमुख आधार माना जाता था। इसी कारण शासकों द्वारा भूमि का दान धार्मिक संस्थाओं, ब्राहमणों, मंदिरों, बौद्ध विहारों तथा जैन मठों को प्रदान किया जाता था। इस व्यवस्था को सामान्यतः भूमि अनुदान (Land Grants) कहा जाता है।

भूमि अनुदान की परंपरा का विकास प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से ही दिखाई देता है, किंतु गुप्तकाल और गुप्तोत्तर काल में इसका व्यापक विस्तार हुआ। इस काल के ताम्रपत्रों और शिलालेखों से ज्ञात होता है कि शासक धार्मिक पुण्य अर्जित करने, अपनी राजनीतिक वैधता को सुदृढ़ करने तथा दूरस्थ क्षेत्रों पर प्रभाव स्थापित करने के उद्देश्य से भूमि अनुदान प्रदान करते थे। इन अनुदानों के अंतर्गत केवल भूमि ही नहीं, बल्कि उससे प्राप्त होने वाले कर, उपज तथा अन्य अधिकार भी दानग्राही संस्थाओं को सौंप दिए जाते थे। धार्मिक संस्थाओं को प्राप्त भूमि ने उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाया। परिणामस्वरूप मंदिर, मठ और विहार केवल पूजा-अर्चना के केंद्र न रहकर शिक्षा, संस्कृति, साहित्य, कला तथा स्थानीय प्रशासन के प्रमुख केंद्रों के रूप में विकसित हुए। दूसरी ओर, भूमि अनुदानों ने ग्रामीण समाज की संरचना, कृषि व्यवस्था तथा राजस्व प्रणाली को भी प्रभावित किया। अनेक इतिहासकारों ने इस प्रक्रिया को भारतीय सामंतवाद के विकास से भी जोड़कर देखा है।

भूमि दान की अवधारणा एवं विकास

प्राचीन भारत में भूमि दान (Land Grant) एक महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक संस्था के रूप में विकसित हुआ। सामान्यतः भूमि दान का तात्पर्य शासकों अथवा भूमि स्वामियों द्वारा किसी व्यक्ति, समूह

* शोधार्थी, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थ नगर

अथवा संस्था को भूमि तथा उससे संबंधित अधिकारों के हस्तांतरण से है। प्राचीन भारतीय परंपरा में भूमि को केवल आर्थिक संसाधन ही नहीं, बल्कि धर्म, सत्ता और प्रतिष्ठा का प्रतीक भी माना जाता था। इसी कारण भूमि दान को अत्यंत पुण्यदायी कार्य माना गया और इसे धर्मशास्त्रों, पुराणों तथा स्मृतियों में विशेष महत्व प्रदान किया गया।

भूमि दान की अवधारणा का प्रारंभिक स्वरूप वैदिक काल में दिखाई देता है, जब राजाओं द्वारा यज्ञों के अवसर पर ब्राह्मणों को विभिन्न प्रकार के दान दिए जाते थे। यद्यपि उस समय भूमि दान के प्रत्यक्ष प्रमाण सीमित हैं, फिर भी उत्तरवैदिक काल में भूमि को दान की वस्तु के रूप में स्वीकार किए जाने के संकेत प्राप्त होते हैं। प्रारंभिक ऐतिहासिक काल तक आते-आते भूमि दान एक संगठित संस्था के रूप में विकसित होने लगा। मौर्योत्तर काल में भूमि दान की परंपरा को अधिक प्रोत्साहन मिला। सातवाहन काल से भूमि अनुदानों के अभिलेखीय प्रमाण प्राप्त होने लगते हैं। गुप्तकाल में यह व्यवस्था और अधिक व्यापक तथा व्यवस्थित हो गई। इस काल में ब्राह्मणों तथा धार्मिक संस्थाओं को कर-मुक्त भूमि प्रदान की जाने लगी। भूमि के साथ-साथ उससे संबंधित राजस्व, कर-संग्रह तथा कुछ प्रशासनिक अधिकार भी दानग्राही को हस्तांतरित किए जाते थे। गुप्तोत्तर काल में भूमि दान व्यवस्था का और विस्तार हुआ। विभिन्न राजवंशों ने धार्मिक संस्थाओं, मंदिरों, मठों तथा विद्वानों को बड़े पैमाने पर भूमि प्रदान की। इससे धार्मिक संस्थाएँ आर्थिक रूप से सशक्त हुईं और स्थानीय समाज में उनका प्रभाव बढ़ा। कई इतिहासकारों ने भूमि दान की इस बढ़ती प्रवृत्ति को भारतीय सामंतवाद के विकास से भी जोड़ा है।

इस प्रकार भूमि दान की अवधारणा समय के साथ धार्मिक दान की एक साधारण परंपरा से विकसित होकर एक व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्था में परिवर्तित हो गई। इसके माध्यम से राज्य, धर्म और समाज के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित हुए, जिन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास की दिशा और संरचना को गहराई से प्रभावित किया।

धार्मिक संस्थाओं को भूमि अनुदान

प्राचीन भारत में धार्मिक संस्थाओं को भूमि अनुदान प्रदान करने की परंपरा सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग थी। शासकों द्वारा ब्राह्मणों, मंदिरों, बौद्ध विहारों तथा जैन संस्थाओं को भूमि प्रदान की जाती थी, जिससे इन संस्थाओं को आर्थिक आधार प्राप्त होता था। भूमि अनुदान केवल धार्मिक श्रद्धा और पुण्य प्राप्ति का साधन नहीं था, बल्कि राज्य की वैधता स्थापित करने, सांस्कृतिक प्रभाव का विस्तार करने तथा स्थानीय समाज पर नियंत्रण सुदृढ़ करने का माध्यम भी था। ताम्रपत्रों, शिलालेखों तथा अन्य अभिलेखीय स्रोतों से ज्ञात होता है कि विभिन्न राजवंशों ने समय-समय पर धार्मिक संस्थाओं को भूमि, कर-अधिकार तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान कीं, जिनका व्यापक प्रभाव तत्कालीन समाज और अर्थव्यवस्था पर पड़ा।

ब्राह्मण एवं अग्रहार - प्राचीन भारत में ब्राह्मणों को भूमि अनुदान देने की परंपरा अत्यंत प्राचीन थी। धर्मशास्त्रों और पुराणों में ब्राह्मणों को भूमि दान को श्रेष्ठतम दानों में माना गया है। गुप्तकाल और गुप्तोत्तर काल में यह प्रथा विशेष रूप से विकसित हुई। ब्राह्मणों को प्रदान की गई भूमि को सामान्यतः "अग्रहार" अथवा "ब्रह्मदेय" कहा जाता था। ये अनुदान प्रायः कर-मुक्त होते थे तथा इनके साथ भूमि से प्राप्त होने वाली आय और अनेक प्रशासनिक अधिकार भी प्रदान किए जाते थे। अग्रहार व्यवस्था के माध्यम से ब्राह्मणों को ग्रामीण क्षेत्रों में बसाया गया, जिससे वैदिक परंपराओं, संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मणीय संस्कृति का प्रसार हुआ। इससे शिक्षा और धार्मिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहन मिला। अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों को संपूर्ण गाँव तक दान में दिए जाते थे। इस प्रकार अग्रहार केवल आर्थिक अनुदान नहीं थे, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण साधन भी थे।

मंदिर एवं देवदान - मंदिरों को भूमि अनुदान प्राचीन भारत की एक प्रमुख विशेषता थी। मंदिरों को प्रदान की गई भूमि को सामान्यतः "देवदान" कहा जाता था। इस प्रकार के अनुदानों का उद्देश्य मंदिरों की पूजा-अर्चना, धार्मिक अनुष्ठानों तथा उनके रखरखाव हेतु स्थायी आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराना था। दक्षिण भारत में पल्लव, चोल तथा राष्ट्रकूट शासकों ने मंदिरों को बड़े पैमाने पर भूमि दान प्रदान किए। मंदिर केवल धार्मिक केंद्र नहीं थे, बल्कि आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं के रूप में भी कार्य करते थे। मंदिरों को प्राप्त भूमि से कृषि उत्पादन होता था, जिससे प्राप्त आय का उपयोग धार्मिक गतिविधियों, शिक्षा, कला, संगीत तथा जनकल्याण संबंधी कार्यों में किया जाता था। कई

मंदिर स्थानीय स्तर पर रोजगार और व्यापार के केंद्र भी बन गए थे। परिणामस्वरूप मंदिरों का प्रभाव धार्मिक क्षेत्र से आगे बढ़कर सामाजिक और आर्थिक जीवन तक विस्तृत हो गया।

बौद्ध विहार - बौद्ध धर्म के विकास में भूमि अनुदानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। प्रारंभिक काल में बौद्ध संघों को व्यापारियों, धनाढ्य व्यक्तियों तथा शासकों से दान प्राप्त होता था। कालांतर में अनेक शासकों ने बौद्ध विहारों को भूमि अनुदान प्रदान किए, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई। नालंदा, विक्रमशिला तथा वल्लभी जैसे प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षण केंद्रों को भूमि और राजस्व संबंधी अधिकार प्राप्त थे। विहारों को दी गई भूमि से प्राप्त आय का उपयोग भिक्षुओं के निर्वाह, शिक्षा, पुस्तकालयों के संरक्षण तथा धार्मिक गतिविधियों के संचालन में किया जाता था। बौद्ध विहार शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के प्रमुख केंद्र बन गए थे, जहाँ देश-विदेश से विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे। इस प्रकार भूमि अनुदानों ने बौद्ध धर्म के संगठनात्मक विकास और उसके सांस्कृतिक प्रभाव को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

जैन संस्थाएँ - जैन धर्म की संस्थाओं को भी विभिन्न शासकों द्वारा भूमि अनुदान प्रदान किए गए। विशेष रूप से दक्षिण और पश्चिम भारत में जैन मठों तथा मंदिरों को पर्याप्त भूमि और आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराए गए। जैन आचार्यों तथा मठों को दिए गए अनुदानों का उल्लेख अनेक अभिलेखों में मिलता है। जैन संस्थाओं को प्राप्त भूमि से उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई तथा वे धार्मिक शिक्षा, साहित्य-सृजन और सामाजिक सेवा के केंद्रों के रूप में विकसित हुईं। अनेक जैन मठों ने स्थानीय समाज में नैतिक मूल्यों, शिक्षा तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। भूमि अनुदानों के कारण जैन धर्म को भी विभिन्न क्षेत्रों में स्थायित्व और विस्तार प्राप्त हुआ।

ब्राह्मणों, मंदिरों, बौद्ध विहारों तथा जैन संस्थाओं को प्रदान किए गए भूमि अनुदान प्राचीन भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता थे। इन अनुदानों ने धार्मिक संस्थाओं को आर्थिक आधार प्रदान किया, उनके प्रभाव क्षेत्र का विस्तार किया तथा धर्म, समाज और राज्य के मध्य घनिष्ठ संबंधों को सुदृढ़ बनाया। साथ ही, इनसे शिक्षा, संस्कृति, कृषि तथा स्थानीय प्रशासन के विकास को भी प्रोत्साहन मिला, जिसके दूरगामी प्रभाव भारतीय इतिहास में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

भूमि अनुदान का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

प्राचीन भारत में भूमि अनुदान व्यवस्था का प्रभाव केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका व्यापक प्रभाव सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा प्रशासनिक जीवन पर भी पड़ा। भूमि अनुदानों के माध्यम से भूमि, राजस्व तथा अनेक प्रशासनिक अधिकार धार्मिक संस्थाओं, ब्राह्मणों और अन्य दानग्राहियों को हस्तांतरित किए जाते थे। परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज की संरचना, कृषि उत्पादन, राजस्व व्यवस्था तथा सामाजिक संबंधों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। आर्थिक दृष्टि से भूमि अनुदानों ने कृषि क्षेत्र के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अनेक अनुदान ऐसे क्षेत्रों में दिए गए जो पूर्णतः विकसित नहीं थे अथवा जहाँ कृषि का विस्तार अपेक्षित था। दानग्राहियों ने इन क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि का विकास कराया, सिंचाई के साधनों को बढ़ावा दिया तथा नई बस्तियों की स्थापना की। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई और स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति मिली। मंदिरों, मठों और अग्रहारों के पास पर्याप्त भूमि होने के कारण वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण केंद्र बन गए।

भूमि अनुदानों का एक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रभाव राजस्व व्यवस्था पर पड़ा। सामान्यतः दान की गई भूमि को कर-मुक्त घोषित किया जाता था अथवा उससे प्राप्त होने वाले करों को दानग्राही के अधिकार में दे दिया जाता था। इससे राज्य के प्रत्यक्ष राजस्व में कमी आती थी, किंतु दूसरी ओर शासकों को धार्मिक समर्थन और राजनीतिक वैधता प्राप्त होती थी। दानग्राही संस्थाएँ स्वयं राजस्व संग्रह का कार्य करने लगीं, जिससे स्थानीय स्तर पर आर्थिक शक्ति का विकेंद्रीकरण हुआ। सामाजिक दृष्टि से भूमि अनुदानों ने ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं की प्रतिष्ठा तथा प्रभाव में वृद्धि की। ब्राह्मणों को दिए गए अग्रहार अनुदानों ने उन्हें ग्रामीण समाज में विशेष स्थान प्रदान किया। वे केवल धार्मिक कार्यों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक नेतृत्व के केंद्र बन गए। इससे ब्राह्मणीय संस्कृति का प्रसार हुआ और अनेक क्षेत्रों में संस्कृतिकरण तथा ब्राह्मणीकरण की प्रक्रिया को बल मिला।

भूमि अनुदानों के कारण सामाजिक संरचना में नए अभिजात वर्ग का उदय हुआ। धार्मिक संस्थाओं और ब्राह्मणों के पास विशाल भूमि-संपत्ति एकत्र होने लगी, जिससे वे स्थानीय समाज में प्रभावशाली वर्ग के रूप में स्थापित हुए। किसानों और कृषक समुदायों को कई बार इन संस्थाओं के अधीन कार्य करना पड़ता था। इससे ग्रामीण समाज में सामाजिक स्तरीकरण और आर्थिक असमानता की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। कुछ इतिहासकारों ने इस प्रक्रिया को भारतीय सामंतवाद के विकास से जोड़कर देखा है। भूमि अनुदानों का प्रभाव शिक्षा और संस्कृति पर भी पड़ा। मंदिर, मठ और विहार ज्ञान तथा शिक्षा के प्रमुख केंद्र बन गए। भूमि से प्राप्त आय का उपयोग विद्यालयों, पुस्तकालयों तथा धार्मिक और साहित्यिक गतिविधियों के संचालन में किया जाता था। नालंदा, विक्रमशिला और अनेक मंदिर-आधारित शिक्षण केंद्र इसी आर्थिक आधार पर विकसित हुए। परिणामस्वरूप ज्ञान, साहित्य, कला, स्थापत्य तथा धार्मिक विचारधाराओं के संरक्षण और प्रसार को प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त भूमि अनुदानों ने स्थानीय प्रशासन को भी प्रभावित किया। अनेक दानपत्रों में दानग्राहियों को न्याय, कर-संग्रह तथा प्रशासन संबंधी अधिकार प्रदान किए जाने का उल्लेख मिलता है। इससे स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक विकेंद्रीकरण को बढ़ावा मिला और धार्मिक संस्थाएँ स्थानीय शासन की महत्वपूर्ण इकाइयों के रूप में उभरीं।

अतः स्पष्ट है कि भूमि अनुदान व्यवस्था ने प्राचीन भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया। इसने कृषि विकास, सांस्कृतिक प्रसार और शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक योगदान दिया, वहीं दूसरी ओर आर्थिक संसाधनों के असमान वितरण तथा नए सामाजिक अभिजात वर्ग के उदय को भी प्रोत्साहित किया। इस प्रकार भूमि अनुदान प्राचीन भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना को समझने की एक महत्वपूर्ण कुंजी है।

अभिलेखीय साक्ष्यों का विश्लेषण

प्राचीन भारत में भूमि अनुदान व्यवस्था के अध्ययन के लिए अभिलेखीय साक्ष्य अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ताम्रपत्र, शिलालेख, स्तंभलेख तथा मंदिर अभिलेख भूमि अनुदानों की प्रकृति, उद्देश्य, अधिकारों और प्रभावों की जानकारी प्रदान करते हैं। साहित्यिक स्रोतों की अपेक्षा अभिलेख अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं क्योंकि वे तत्कालीन प्रशासनिक एवं राजकीय कार्यों का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। भूमि अनुदानों से संबंधित अधिकांश अभिलेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी, गुप्त अथवा क्षेत्रीय लिपियों में उपलब्ध हैं। भूमि अनुदानों के प्रारंभिक प्रमाण मौर्योत्तर काल से प्राप्त होने लगते हैं, किंतु गुप्तकाल और गुप्तोत्तर काल में इनकी संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। गुप्त शासकों के ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं को कर-मुक्त भूमि प्रदान की जाती थी। इन अभिलेखों में भूमि की सीमा, उसके स्वामित्व, दानग्राही के अधिकारों तथा स्थानीय अधिकारियों के दायित्वों का विस्तृत विवरण मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भूमि अनुदान एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक प्रक्रिया थी।

दक्षिण भारत के अभिलेख भूमि अनुदान व्यवस्था के विकास को समझने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। पल्लव, चोल, राष्ट्रकूट और चालुक्य शासकों द्वारा जारी अभिलेखों में मंदिरों तथा ब्राह्मणों को दिए गए भूमि अनुदानों का उल्लेख मिलता है। इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि मंदिर केवल धार्मिक केंद्र नहीं थे, बल्कि आर्थिक और प्रशासनिक गतिविधियों के भी प्रमुख केंद्र बन चुके थे। भूमि से प्राप्त आय का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, शिक्षा, सिंचाई तथा जनकल्याण के कार्यों में किया जाता था।

बौद्ध और जैन संस्थाओं से संबंधित अभिलेख भी भूमि अनुदानों की परंपरा पर प्रकाश डालते हैं। नालंदा तथा अन्य बौद्ध विहारों से संबंधित अभिलेख दर्शाते हैं कि शासकों ने इन संस्थाओं को भूमि और राजस्व संबंधी अधिकार प्रदान किए थे। इसी प्रकार जैन मठों को दिए गए अनुदानों के अभिलेख उनके आर्थिक आधार और सामाजिक प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। अभिलेखीय साक्ष्यों के विश्लेषण से यह भी ज्ञात होता है कि भूमि अनुदानों के माध्यम से धार्मिक संस्थाओं और ब्राह्मणों को अनेक विशेषाधिकार प्रदान किए जाते थे। कई अभिलेखों में कर-मुक्ति, राजकीय हस्तक्षेप से सुरक्षा तथा प्रशासनिक अधिकारों का उल्लेख मिलता है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि भूमि अनुदान केवल धार्मिक दान नहीं था, बल्कि यह राज्य, धर्म और समाज के बीच संबंधों को सुदृढ़ करने का एक महत्वपूर्ण साधन था। अभिलेखीय साक्ष्य प्राचीन भारत की भूमि अनुदान व्यवस्था, धार्मिक संस्थाओं की भूमिका तथा तत्कालीन

सामाजिक-आर्थिक संरचना को समझने का प्रामाणिक आधार प्रदान करते हैं। इनके अध्ययन से भूमि अनुदानों के बहुआयामी प्रभावों का सम्यक् मूल्यांकन संभव होता है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में भूमि अनुदान व्यवस्था धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन की एक महत्वपूर्ण संस्था थी। शासकों द्वारा ब्राह्मणों, मंदिरों, बौद्ध विहारों तथा जैन संस्थाओं को प्रदान किए गए भूमि अनुदानों ने इन संस्थाओं को स्थायी आर्थिक आधार प्रदान किया और उन्हें समाज में प्रभावशाली स्थान दिलाया। अभिलेखीय साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि भूमि अनुदान केवल धार्मिक श्रद्धा अथवा पुण्य प्राप्ति का साधन नहीं था, बल्कि राज्य की राजनीतिक वैधता को सुदृढ़ करने, सांस्कृतिक प्रभाव के विस्तार तथा स्थानीय प्रशासन को व्यवस्थित करने का भी माध्यम था। भूमि अनुदानों के परिणामस्वरूप धार्मिक संस्थाएँ शिक्षा, संस्कृति, साहित्य, कला तथा जनकल्याण की महत्वपूर्ण केंद्र बन गईं। इनसे कृषि विस्तार, ग्रामीण विकास तथा सांस्कृतिक प्रसार को भी प्रोत्साहन मिला। दूसरी ओर, भूमि और राजस्व अधिकारों के हस्तांतरण से नए भू-स्वामी एवं धार्मिक अभिजात वर्ग का उदय हुआ, जिसने सामाजिक संरचना और शक्ति-संतुलन को प्रभावित किया।

अभिलेखीय स्रोतों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भूमि अनुदान व्यवस्था ने प्राचीन भारतीय समाज में धर्म, राज्य और अर्थव्यवस्था के मध्य घनिष्ठ संबंध स्थापित किए। अतः भूमि अनुदानों का अध्ययन न केवल धार्मिक इतिहास को समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि प्राचीन भारत की सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना के व्यापक विश्लेषण के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Sharma, R. S. (1980). *Indian Feudalism*. Macmillan India.
2. Sircar, D. C. (1965). *Indian Epigraphy.* Motilal Banarsidass.
3. Thapar, R. (2002). *Early India: From the Origins to AD 1300.* University of California Press.
4. Gopal, L. (1965). *The Economic Life of Northern India.* Motilal Banarsidass.
5. Kulke, H., & Rothermund, D. (2016). *A History of India (6th ed.)*. Routledge.